MAHIN 2.3

एम.ए.हिन्दी
राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के अनुसार
संशोधित पाठ्यक्रम
सत्र - २

भाषा विज्ञान
(LINGUISTICS)

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्राध्यापक रविंद्र द. कुलकर्णी
कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

डॉ. अजय भामरे
प्र-कुलगुरु,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक शिवाजी सरगर
संचालक,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

कार्यक्रम समन्वयक : **प्रा. अनिल आर. बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक, इतिहास विभाग व
प्रमुख, मानव्यविद्याशाखा,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

अभ्यासक्रम समन्वयक : **डॉ. अनिल गोविन्द चौधरी**
सहायक प्राध्यापक,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

संपादक एवं लेखक : **डॉ. अनिल गोविन्द चौधरी**
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

लेखक : **डॉ. संतोष मोटवानी**
प्रोफेसर, हिंदी विभागाध्यक्ष,
आर. के. तलरेजा महाविद्यालय,
उल्हासनगर

: **डॉ. उदय भंडारे**
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभागाध्यक्ष,
चांगु काना ठाकुर कला, वाणिज्य एवं विज्ञान
महाविद्यालय, न्यू पनवेल (ई), रायगड

: **डॉ. सुधीर चौबे**
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
के. सी. महाविद्यालय, चर्चगेट

जुन २०२५, मुद्रण - १

प्रकाशक : संचालक, दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, मुंबई विद्यापीठ,
विद्यानगरी, मुंबई -४०० ०९८.

अक्षर जुळणी व मुद्रण : मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय,
विद्यानगरी, सांताक्रुझ (पूर्व), मुंबई - ४०००९८

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
१.	वाक्य विज्ञान	०१
२.	अर्थ परिवर्तन	१४
३.	लिपि विज्ञान	३२
४.	हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	४४
५.	हिंदी का भाषिक स्वरुप	६४
६.	देवनागरी लिपि एवं हिंदी का मानकीकरण	७२
७.	संज्ञा में परिवर्तन के आधार	८३
८.	सर्वनाम, विशेषण और क्रिया का रुपान्तर	९७
९.	उपसर्ग, प्रत्यय और समास	१०८
१०.	समाज, संस्कृति और भाषा	१२४
११.	भाषा, उपभाषा और बोली	१४०
१२.	शैली विज्ञान	१४८

❖❖❖❖

NAME OF PROGRAM	M.A.(C.B.C.S).
NAME OF THE COURSE	M.A.(Hindi)
SEMESTER	II
PAPER NAME	**Linguistics** (भाषा विज्ञान)
PAPER NO.	**18**
COURSE CODE	**33513**
LACTURE	**60**
INTERNAL ASSESSMENT	**50**
EXTERNAL ASSESSMENT	**50**
CREDITS & MARKS	**4 & 100**

Course outcomes:

क) भाषा एवं संप्रेषण के वैज्ञानिक पक्ष की पहचान

ख) हिंदी भाषा के विकास की परंपरा का पड़ताल

ग) भाषिक प्रयुक्तियों की जानकारी

घ) भाषिक कौशल का विकास

MODULE I : (2 CREDITS)

Unit 1 :

क) वाक्य विज्ञान – परिभाषा, अभिहितान्ययवाद और अन्विताभिधानवाद, वाक्य के अनिवार्य तत्त्व, वाक्य के भेद, निकटस्थ अवयव, अंत: केन्द्रित और बहि:केन्द्रिक संरचना

ख) अर्थ परिवर्तन – अवधारणा, शब्द और अर्थ का संबंध, अर्थ परिवर्तन कारण, अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

ग) लिपि विज्ञान – भारतीय लिपियों का उद्भव और विकास

Unit 2 :

क) हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि – प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ और उनकी विशेषताएं, मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय भाषाओँ की विशेषताएं, आधुनिक भारतीय भाषाएँ और उनका वर्गीकरण

ख) हिंदी का भाषिक स्वरूप : हिंदी स्वरों और व्यंजनों का वर्गीकरण

ग) देवनागरी लिपि एवं हिंदी का मानकीकरण

MODULE II : **(2 CREDITS)**

Unit 3:

क) संज्ञा में परिवर्तन के आधार

ख) सर्वनाम विशेषण और क्रिया का रूपांतर

ग) उपसर्ग, प्रत्यय, समास

Unit 4:

क) समाज, संस्कृति और भाषा

ख) भाषा, उपभाषा और बोली

ग) शैली विज्ञान

References :

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद।
2. हिन्दी भाषा और लिपि – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग।
3. भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
4. हिन्दी भाषा का इतिहास – डॉ. भोलानाथ तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
5. भाषा विज्ञान की भूमिका – देवेन्द्रनाथ शर्मा, दीप्ति शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
6. व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण – श्यामचन्द्र कपूर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
7. व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण एवं रचना – डॉ. संतोष चौधरी, कनक सक्सेना, आस्था प्रकाशन, जयपुर।
8. मानक हिन्दी व्याकरण और रचना – डॉ. हरिवंश तरुण, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
9. हिन्दी व्याकरण – पं. कामता प्रसाद गुरु, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
10. आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धान्त – डॉ. राम किशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. हिन्दी व्याकरण और रचना – वासुदेवनंदन प्रसाद, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
12. हिन्दी शब्दानुशासन – आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
13. आधुनिक भाषा विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
14. हिन्दी भाषा इतिहास और संरचना – डॉ. हरिश्चंद्र पाठक, तक्षशीला प्रकाशन, नई दिल्ली।
15. मानक हिन्दी व्याकरण – डॉ. पृथ्वीनाथ पाण्डेय, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
16. सामान्य भाषा विज्ञान – डॉ. बाबूराम सक्सेना, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
17. भाषिकी, हिंदी भाषा तथा भाषा शिक्षण - डॉ. अंबादास देशमुख, शैलजा प्रकाशन, कानपूर
18. भाषा विज्ञान के अधुनातन आयाम - डॉ. अंबादास देशमुख, शैलजा प्रकाशन, कानपूर

१

वाक्य विज्ञान

इकाई की रूपरेखा :

१.० इकाई का उद्देश्य

१.१ प्रस्तावना

१.२ वाक्य विज्ञान

१.१.१ वाक्य विज्ञान का स्वरूप

१.१.२ वाक्य विज्ञान की परिभाषा

१.१.३ अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद

१.१.४ वाक्य के अनिवार्य तत्व

१.१.५ वाक्य के भेद

१.१.६ निकटस्थ अवयव

१.१.७ अंतः केन्द्रिक और बहि: केन्द्रिक संरचना

१.३ सारांश

१.४ अतिलघुत्तरीय प्रश्न

१.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१.७ संदर्भ ग्रंथ

१.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन के बाद छात्रों का निम्नलिखित मुद्दों से परिचय होगा -

- वाक्य विज्ञान के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- वाक्य विज्ञान की विविध विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषा से परिचय होगा।
- अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद से अवगत हो सकेंगे।
- वाक्य के अनिवार्य तत्त्वों से परिचय होना |
- साथ ही वाक्य के भेद, निकटस्थ अवभव और अंत: केन्द्रिक तथा बहि: केन्द्रिक संरचना का छात्र अध्ययन करेंगे |

१.१ प्रस्तावना

पद विज्ञान तथा रूप विज्ञान का अध्ययन करने के पश्चात वाक्य विज्ञान का अध्ययन करते हुए भाषा में प्रयुक्त विभिन्न पदों के परस्पर संबंधों का विचार किया जाता है। रूप विज्ञान और वाक्य विज्ञान में सिर्फ यही अंतर है कि पद - विज्ञान में पदों की रचना का विवेचन किया जाता है। परंतु वाक्य विज्ञान में पूर्वोक्त विधि से बने हूए पदों का कहाँ, किस प्रकार से प्रयोग होता है, पदों को किस प्रकार रखना या सजाना चाहिए, उनको विभिन्न प्रकार से रखने से अर्थ में क्या अंतर होता है आदि का विवेचन वाक्य विज्ञान में होता है।

१.२ वाक्य विज्ञान

१.२.१ वाक्य विज्ञान का स्वरूप :

वाक्य विज्ञान में भाषा में प्रयुक्त विभिन्न पदों के परस्पर संबंध का अध्ययन किया जाता है। वाक्य-विज्ञान के अंतर्गत वाक्य का स्वरूप, वाक्य की परिभाषा, वाक्य की रचना, वाक्य के अनिवार्य तत्व, वाक्य में पढ़ने का विन्यास, वाक्यों के प्रकार, वाक्य विभाजन, वाक्य के निकटस्थ अवयव, वाक्य में परिवर्तन, परिवर्तन की दिशाएँ एवं कारण आदि का अध्ययन किया जाता है।

१.२.२ वाक्य की परिभाषाएँ :

वाक्य को अनेक पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। उनमें से कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित है।

१) पतंजलि के अनुसार - "कारक, अव्यय विशेषण, क्रिया विशेषण तथा क्रिया के एक साथ प्रयोग" या "मात्र क्रियापद के प्रयोग" को या कभी-कभी क्रियापदरहित एकमात्र तर्पणम या पिण्डीज जैसे संज्ञापद को भी वाक्य मानते हैं।

२) डॉ. अंबाप्रसाद सुमन - "वाक्य भाषा की लघुतम पूर्ण स्वतंत्र इकाई है, जो विचार की ध्वनिमयी सार्थक अभिव्यक्ति है।" इस ध्वनिमयी सार्थक अभिव्यक्ति में शब्द - समूह भी हो सकता है और एक शब्द भी।

३) डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा के अनुसार - "भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है।"

४) बद्रीनाथ कपूर के अनुसार - "वाक्य भाषा की ऐसी इकाई है, जिसके द्वारा कोई बात कही गई हो।"

५) रामचंद्र वर्मा के अनुसार, "जिस पद या पदों के समूह से पूरी बात समझ में आ जाए या जिसमें कोई विचार प्रकट होता हो, उसे वाक्य कहते हैं।"

६) कामता प्रसाद के अनुसार - "एक पूर्ण विचार व्यक्त करने वाला शब्द - समूह वाक्य कहलाता है।"

७) यूरोप में पहली शताब्दी में डिनियोसियस प्रेक्स ने वाक्य को परिभाषित करते हुए कहा है - "पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाला शब्द-समूह वाक्य है।" परंतु वाक्य की यह परिभाषा विवाद से पर नहीं है। इस परिभाषा के अनुसार वाक्य की दो विशेषताएँ है -

   i) "वाक्य, शब्दों का समूह है" तथा

ii) "वाक्य पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराता है"

iii) विचार करने पर वाक्य की इन दोनों विशेषताओं का खंडन किया जा सकता है, क्योंकि न तो "वाक्य, शब्दों का समूह" है और न ही "वाक्य पूर्ण अर्थ की प्रतीति करता है।"

सामान्यत: वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है - "वाक्य भाषा की वह सहज इकाई है जिसमें एक या अधिक शब्द (पद) होते है तथा जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो या अपूर्ण, व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ट संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है, साथ ही उसके प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम से कम एक समापिका क्रिया अवश्य होती है।"

१.२.३ अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद :

पद और वाक्य के संदर्भ में विद्वान अपनी दृष्टि से विचार करते हैं। इस पर विचार करनेवालों में प्रमुख दो आचार्य हैं। उनमें से एक पद को महत्व देता है तो दूसरा पद वाक्य को। इस तरह पद और वाक्य के सापेक्ष महत्व पर दो विभिन्न मत दिखाई देते है। मीमांसको ने पद और वाक्य के संबंध में दो सिद्धांत दिए है।

अभिहितान्वयवाद :

अभिहितान्वयवाद के प्रर्वतक आचार्य कुमारिल भट्ट हैं। अभिहितान्वयवाद की परिभाषा कुमारिल भट्ट ने निम्नानुसार दी है -

"अभिहितानां पदार्थानाम अन्वय:"

अभिहितान्वयवादी पदों को महत्व देते हैं उनका मत हैं कि पदों के योग से वाक्य बनता है। पद अपने अर्थ को कहते हैं और उनका वाक्य से अन्वय हो जाता है। इस अन्वय में एक विशिष्ट प्रकार का वाक्यार्थ निकलता है। इस सिद्धांत में पदों को महत्व देने के कारण इसे 'पद-वाद' भी कह सकते हैं। इस वाद में पदों का महत्व है और पदसमूह ही वाक्य है। पद के अतिरिक्त वाक्य का कोई महत्व नहीं है ऐसा इनका कहना है। इस वाद के अनुसार पद की ही सार्थक सत्ता है और वाक्य पदों का जोड़ा हुआ रुप है।

अन्विताभिधानवाद :

इस वाद के प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भट्ट के शिष्य आचार्य प्रभाकर गुरु हैं। आचार्य प्रभाकर गुरु योग्यता में अपने गुरु से भी बड़े थे। इसी कारण अपने गुरु का भी गुरु हो जाने के कारण गुरु कहलाये जाने लगे। इनका मत अन्विताभिधानवाद कहा जाता है। इसका अर्थ है –

"अन्वितानां पदार्थानाम् अभिधानम्।"

वाक्य में पदों के अर्थ समन्वित रूप से विद्यमान रहते हैं। वाक्य को तोडने से अलग-अलग पदों का अर्थ ज्ञात होता है। वाक्य से पदों को अलग करने की प्रक्रिया को "अपोद्धार" (Analysis) कहते हैं। इस वाद में वाक्य को महत्व दिया जाता है। अत: इसे "वाक्यवाद" भी कह सकते हैं। इस वाद के अनुसार पदों की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। पद वाक्य के अवयव है और वाक्य विश्लेषण से उसका अर्थ निकलता है।

इस मत के अनुसार वाक्य ही भाषा की सार्थक इकाई है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक भी वाक्य में सार्थक इकाई मानते हैं।

१.१.४ वाक्य के अनिवार्य तत्व:

विश्वनाथ के अनुसार वाक्य-गठन के लिए तीन तत्व अपेक्षित हैं। अभिहितान्वयवाद के अनुसार पदों के योग से वाक्य की निष्पत्ति होती है। इसलिए अभिहितान्वयवादी आचार्य कुमारिल भट्ट आदि ने वाक्य में तीन तत्त्वों को अनिवार्य बताया है –

१. आकांक्षा, २. योग्यता और ३. आसत्ति (संनिधि)।

इसको ही आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है -

वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः। (सा० दर्पण २-१)

इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

(१) आकांक्षा - आकांक्षा का अर्थ है - अपेक्षा या जिज्ञासा की असमाप्ति अर्थात आकांक्षा यहाँ अर्थ की अपूर्णता को इंगित करती है एवं इच्छा से है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों को एक-दूसरे की अपेक्षा रहती है। कर्ता को कर्म और क्रिया की अपेक्षा रहती है; कर्म को कर्ता एवं क्रिया की तथा क्रिया को कर्ता एवं कर्म की। अपेक्षा को 'जिज्ञासा' भी कह सकते हैं। इस अपेक्षा या जिज्ञासा की पूर्ति होने पर ही वाक्य बनता है। आकांक्षा की पूर्ति के बिना वाक्य अपूर्ण रहता है। इसलिए वाक्य में पदों का साकांक्ष होना अनिवार्य है। साकांक्षता के कारण वाक्य में पद परस्पर संबद्ध (Inter-related) होते हैं। जैसे - केवल 'राम' कहने से वाक्य पूरा नहीं होता है। जिज्ञासा होती है कि वह क्या करता है?, 'पढ़ता है' कहने पर जिज्ञासा होती है कि 'कौन पढ़ता है?', 'क्या पढ़ता है?' इसी प्रकार केवल 'पुस्तक' कहने से भी वाक्य की पूर्ति नहीं होती। 'पुस्तक का क्या होता है?', 'रामः पुस्तकं पठति' (राम पुस्तक पढ़ता है), वाक्य में कर्ता 'राम', 'पुस्तक' नाम के कर्म को, 'पढ़ना' क्रिया करता है। ये तीनों पद 'रामः पुस्तकं पठति' परस्पर आकांक्षा-युक्त (साकांक्ष, अपेक्षायुक्त) हैं, अतः वाक्य पूर्ण हुआ। आकांक्षा के द्वारा श्रोता की जिज्ञासा की पूर्ति होती है, साकांक्ष पद ही वाक्य होते हैं। आकांक्षा - रहित गाय, अश्व, मनुष्य आदि शब्द वाक्य नहीं होते।

(२) योग्यता – योग्यता का अर्थ है पदों में पारस्परिक संबंध की योग्यता या क्षमता। अर्थात् - पदों के द्वारा जो अर्थ कहा जा रहा है, उसको क्रियात्मक रूप देने की योग्यता या क्षमता होनी चाहिए। इसका अभिप्राय यह होता है कि पदों के अन्वय में कोई बाधा न हो। पदों के अन्वय में दो प्रकार से बाधा पड़ती है - (क) अर्थमूलक, (ख) व्याकरण-मूलक।

(क) अर्थमूलक बाधा या अयोग्यता - कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से ठीक हो, परन्तु अर्थ या प्रतीति की दृष्टि से अयोग्य या अनुपयुक्त हो तो वह वाक्य नहीं होगा। जैसे - स वह्निना सिञ्चति (वह आग से सींचता है), स वायुना लिखति (वह हवा से लिखता है)। आग से सींचा नहीं जा सकता है और न हवा से लिखा जा सकता है, अतः ये दोनों वाक्य व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने पर भी अर्थ की दृष्टि से अयोग्य हैं, अतः वाक्य नहीं हैं, यहाँ पर अर्थ या प्रतीति-सम्बन्धी बाधा है।

(ख) व्याकरण - मूलक बाधा या अयोग्यता - वाक्य यदि अर्थ की दृष्टि से ठीक हो और व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हो तो वह वाक्य नहीं माना जाएगा। लिग, विभक्ति, वचन, विशेषण आदि में 'व्याकरणिक अन्विति' या एकरूपता होनी चाहिए। निम्नलिखित वाक्यों में व्याकरण की दृष्टि से अयोग्यता है - १. सुशीला जाता है। २. राम आती है। ३. मैं सुन्दरी पुस्तक देखता है। ४. राम ने बोला। इनमें लिंग, विभक्ति, विशेषण आदि की अयोग्यता है।

अंग्रेजी में व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता को Congruence या Concord कहते हैं। हिन्दी में व्याकरणिक एकरूपता को 'अन्विति' या 'पदों की अन्विति' कहते हैं । अंग्रेजी के Congruence या Concord का अभिप्राय संस्कृत के 'योग्यता' शब्द में समाहित है।

(३) आसत्ति (संनिधि) - आसत्ति का अर्थ है समीपता या निकटता। इसको ही संनिधि भी कहते हैं। समीपता से अभिप्राय है कि वाक्य में प्रयुक्त पद लगातार या क्रमबद्ध रूप से उच्चरित हों। बीच में आवश्यकता से अधिक समय देने पर उन पदों का क्रम टूट जाएगा और वे वाक्य नहीं बनेंगे। 'मैं खाना खाता हूँ' में 'मैं खाना' आज बोला गया और २ घंटे या १ दिन बाद कहा गया 'खाता हूँ' समय का अधिक व्यवधान हो जाने से यह वाक्य नहीं बनेगा और न इससे कोई अर्थ निकलेगा। इसलिए समय की समीपता या सान्निध्य अनिवार्य है, जिससे वाक्य क्रमबद्ध हो सके। अर्थात वाक्य-गठन में निकटता बहुत जरूरी है क्योंकि एक पद आज कहें और एक कल तो अर्थ की प्रतीति कभी नहीं होगी।

इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहा है। इसी प्रकार उक्त गुणों से युक्त वाक्यों के समूह को 'महावाक्य' नाम दिया है। सभी काव्य, महाकाव्य आदि ग्रन्थ 'महावाक्य' हैं। कुमारिल ने तन्त्रवार्तिक में वाक्यों से महावाक्य बनने में अंगागिभाव से अपेक्षा होने से पुनः समन्वय होकर एकवाक्यता मानी है।

कुछ विद्वानों ने आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति के अतिरिक्त दो अन्य तत्त्वों का उल्लेख किया है - १. सार्थकता, २. अन्विति। वस्तुतः ये दोनों तत्त्व 'योग्यता' में ही आ जाते हैं।

१. सार्थकता - वाक्य में प्रयुक्त शब्द सार्थक होने चाहिए। पद तभी वाक्य बनते हैं, जब वे सार्थक हों। 'योग्यता' के द्वारा पदों की सार्थकता भी आवश्यक है। सार्थक पद ही अर्थ - प्रतीति की योग्यता रखते हैं। अतः सार्थकता का पृथक् उल्लेख अनावश्यक है।

२. अन्विति (अन्वय) - अन्विति का अर्थ है - व्याकरण की दृष्टि से एकरूपता। लिंग, वचन, विभक्ति, विशेषण आदि समरूप हों। लिंगभेद, वचनभेद, विभक्तिभेद आदि से व्याकरण-सम्बन्धी अनुरूपता विच्छिन्न होती है, अतः अन्विति की आवश्यकता है। ऊपर 'योग्यता' में व्याकरणमूलक बाधा का अभाव भी अनिवार्य बताया गया है, अतः अन्विति या अन्वय को पृथक् मानना आवश्यक नहीं है। व्याकरण सम्बन्धी अन्विति को अंग्रेजी में Congruence, Concord, Agreement कहते हैं।

१.१.५. वाक्य के भेद:

विभिन्न दृष्टिकोण से विचार करने पर वाक्य के अनेक भेद दृष्टिगोचर होते है। उसे इस प्रकार से देखा जा सकता है -

१. आकृति मूलक भेद

२. रचना मूलक भेद

३. अर्थ मूलक भेद

४. क्रिया मूलक भेद

५. शैली मूलक भेद

१. आकृति-मूलक भेद:

विश्व की कई भाषाओं का आकृतिमूलक के आधार पर भेद किया जाता है। इसमें प्रकृति (Root) और प्रत्यय (Affix) अर्थात अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व किस प्रकार से मिलते है, उसे जानने के लिए अन्य बिंदुओं की चर्चा आवश्यक है।

i) अयोगात्मक वाक्य

ii) श्लिष्ट योगात्मक वाक्य

iii) अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य

iv) प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य

i) अयोगात्मक वाक्य: अयोग का अर्थ है प्रकृति और प्रत्यय। अर्थात अर्थतत्व और सम्बन्ध तत्त्व का मिला हुआ न होना। अयोगात्मक भाषाओं में प्रकृति-प्रत्यय अलग-अलग रहते हैं। इनमें कारक चिन्ह आदि स्वंतंत्र शब्द होते है। चीनी भाषा अयोगात्मक भाषा है। इसमें पद-क्रम निश्चित है – कर्ता, क्रिया और कर्म। विशेषण कर्ता के पूर्व आता है। जैसे –

1.	ता जेन	(बड़ा आदमी),	(ता-बड़ा, जेन-आदमी)
	जेन ता	(आदमी बड़ा है)	(इसमें 'ता' विधेय हो गया है)
2.	वो ता नी	(मैं तुझे मारता हूँ),	(वो-मैं, ता-मारना, नी-तुम)
	नी ता वो	(तू मुझे मारता है),	(नी-तू, ता-मारना, वो मैं)

(ii) श्लिष्ट योगात्मक वाक्यः ऐसे वाक्य में प्रकृति और प्रत्यय श्लिष्ट (मिले हुए, जुड़े) होते हैं। इनमें प्रकृति (शब्द, धातु) और प्रत्यय को अलग-अलग करना कठिन होता है। भारोपीय परिवार की प्राचीन भाषाएँ संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, अवेस्ता आदि इसी प्रकार की हैं। संस्कृत के उदाहरण हैं-

वक्षात् पत्रम् अपतत् (पेड़ से पत्ता गिरा)।

अहं गुरुं द्रष्टुम् अगच्छम् (मैं गुरु को देखने गया)।

यहाँ वृक्ष + पंचमी एकवचन, पत्र + प्रथमा एकवचन, पत् + लङ् प्र. पु. एक. है। अस्मद् + प्रथमा एकवचन, गुरु + द्वितीया एकवचन, दृश् + तुम्, गम् + लङ् उ. पु. एकवचन है। इन वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय को सरलता से अलग नहीं किया जा सकता है।

(iii) अश्लिष्ट योगात्मक वाक्यः ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय अथवा अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व अश्लिष्ट (घनिष्ठता से न मिलना) ढंग के मिले हुए होते हैं। प्रकृति और प्रत्यय जुड़े होने पर भी तिल-तण्डुल-वत् (तिल और चावल की तरह) अलग-अलग देखे जा सकते हैं। तुर्की भाषा में इसके सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। जैसे - एल्-इम्-डे-कि (मेरे हाथ में है, एल्-हाथ, इम्-मेरा, डे-में, कि-होना (El-im-de-ki) |

(iv) प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्यः ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय इतने अधिक घनिष्ठ रूप में मिल जाते हैं कि पदों को पृथक् करना कठिन होता है। पूरा वाक्य एक शब्द-सा हो जाता है। ऐसे उदाहरण दक्षिण अमेरिका की चेरोकी भाषा, पेरीनीज पर्वत के पश्चिमी भाग में बोली जानेवाली बास्क भाषा आदि में मिलते हैं।

(a) चेरोकी में - नाधोलिनिन (हमारे पास नाव लाओ)

(b) बास्क में - हकारत (मैं तुझे ले जाता हूँ)

हिन्दी आदि की बोल-चाल की भाषा में ऐसे उदाहरण मिलते हैं -

(a) भोजपुरी - सुनलेहलीहं (मैंने सुन लिया है)

(b) मेरठ की बोली - उन्नेका (उसने कहा)

(c) गुजराती - मकुंजे (मैं कह्यु जे, मैंने यह कहा कि)

२. रचना-मूलक भेदः

वाक्य की रचना या गठन के आधार पर वाक्य के तीन भेद होते हैं -

(i) सामान्य (सरल या साधारण) वाक्य (Simple Sentence), (ii) मिश्र वाक्य (Complex Sentence) और (iii) संयुक्त वाक्य (Compound Sentence)

(i) सामान्य वाक्यः इसमें एक उद्देश्य होता है और एक विधेय अर्थात् एक संज्ञा और एक क्रिया। जैसे - वह पुस्तक पढ़ता है।

(ii) मिश्र वाक्यः इसमें एक मुख्य वाक्य होता है और उसके आश्रित एक या अनेक उपवाक्य होते हैं। जैसे -

(a) यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः ।

(b) यस्यार्थाः तस्य मित्राणि ।

(c) जिसके पास धन होता है, उसके सभी मित्र होते हैं।

(d) जिसके पास विद्या है, उसका सर्वत्र आदर होता है।

(iii) संयुक्त वाक्यः इसमें एक से अधिक प्रधान उपवाक्य होते हैं। इनके साथ आश्रित उपवाक्य एक या अनेक होते है अथवा नहीं भी होते हैं। जैसे -

(a) जब मैं गुरु की कुटी पर पहुँचा तो वे स्नान करने नदी पर गए थे।

(b) यदाऽहं गुरुगृहं प्रापम्, तदा स स्नानार्थ नदीं गत आसीत्।

३. अर्थमूलक भेदः

अर्थ या भाव (Mood) की दष्टि से वाक्य के प्रमुख आठ भेद किए जाते हैं -

(i) विधि-वाक्य	कृष्ण काम करता है।
(ii) निषेध-वाक्य	कृष्ण काम नहीं करता है।
(iii) प्रश्न-वाक्य	क्या कृष्ण काम करता है?
(iv) अनुज्ञा-वाक्य	तुम करो!
(v) सन्देह-वाक्य	कृष्ण काम करता होगा।

(vi) इच्छार्थक-वाक्य ईश्वर, तुम्हें सद्बुद्धि दे।

(vii) संकेतार्थ-वाक्य यदि कृष्ण पढ़ता तो अवश्य उत्तीर्ण होता।

(viii) विस्मयार्थक वाक्य अरे तुम उत्तीर्ण हो गए !

सुर आदि के आधार पर अन्य भेद भी किए जा सकते हैं।

४. क्रिया-मूलक भेदः

वाक्य में क्रिया के आधार पर दो भेद होते हैं -

(i) क्रियायुक्त वाक्य, (ii) क्रियाहीन वाक्य।

(i) क्रियायुक्त वाक्यः सामान्यतया सभी भाषाओं में एक वाक्य में एक क्रिया होती है। वह विधेय के रूप में होती है। अधिकांश वाक्य इसी कोटि में आते हैं।

जैसे - सः पुस्तकं पठति (वह पुस्तक पढ़ता है)।

वाच्य (Voice) के आधार पर क्रियायुक्त वाक्य तीन प्रकार के होते हैं -

(a) कर्तृवाच्य, (b) कर्मवाच्य और (c) भाववाच्य।

(a) **कर्तृवाच्य** में कर्ता मुख्य होता है। कर्ता में प्रथमा होती है। जैसे - रामः पुस्तकं पठति (राम पुस्तक पढ़ता है)।

(b) **कर्मवाच्य** में कर्म मुख्य होता है, अतः कर्म में प्रथमा होती है और कर्ता में तृतीया। जैसे - मया पुस्तकं पठ्यते (मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है)।

(c) **भाववाच्य** में क्रिया मुख्य होती है। कर्म नहीं होता। कर्ता में तृतीया होती है और क्रिया में सदा प्रथम पुरुष एकवचन होता है। जैसे - मया हस्यते (मेरे द्वारा हँसा जाता है), मया हसितम् (मैं हँसा)।

(ii) क्रियाहीन वाक्यः प्रचलन के आधार पर कई भाषाओं में क्रियाहीन वाक्यों का भी प्रयोग होता है। वहाँ क्रियापद गुप्त रहता है।

(a) प्रचलन-मूलकः प्रचलन के आधार पर संस्कृत, रूसी, बंगला आदि में सहायक क्रिया के बिना भी वाक्यों का प्रयोग होता है। क्रिया अन्तर्निहित (Understood) मानी जाती है। हिन्दी, अंग्रेजी में सामान्यता सहायक क्रिया का होना अनिवार्य है। जैसे-

संस्कृत - इदं मम गृहम् (यह मेरा घर है)

रूसी - एता मोय दोम (यह मेरा घर है)

बंगला - एइ आमार बाड़ी (यह मेरा घर है)

(b) प्रश्न-वाक्यः प्रश्न वाक्यों में प्रश्न और उत्तर दोनों स्थलों पर या केवल उत्तर वाक्य में क्रिया नहीं होती। जैसे-

प्रश्न - कस्मात् त्वम् (कहाँ से?)।

उत्तर - प्रयागात् (प्रयाग से)।

यहाँ पर पूरा प्रश्न वाक्य होगा --- तुम कहाँ से आ रहे हो? उत्तर- मैं प्रयाग से आ रहा हूँ। प्रयत्नलाघव के कारण क्रियाहीन वाक्य का प्रयोग होता है।

(c) मुहावरों में लोकोक्तियों या मुहावरों में क्रियाहीन वाक्यों का प्रयोग होता है। जैसे, यथा राजा तथा प्रजा (जैसा राजा वैसी प्रजा); गुणाः पूजास्थानम् (गुण पूजा के स्थान हैं); प्रज्ञाहीनः अन्ध एव (बुद्धिहीन अन्धा है); घर का जोगी जोगना आन गावं का सिद्ध, आम के आम गुठली के दाम; सत्यं शिवं सुन्दरम्; जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ।

(d) विज्ञापनों, समाचार पत्रादि के शीर्षकों में – 'बुढ़े से जवान', 'नक्कालों से सावधान', 'देश में दुर्भिक्ष', 'युवती पर हमला', 'हिन्दुओं सावधान', 'इस्लाम खतरे में' आदि।

(c) आतंक, भय, विस्मय आदि के सूचक पदों में – आग!, चोर-चोर!, हाय दुर्भाग्य!, बाढ़-बाढ़! भूकम्प!

५. शैली-मूलक भेदः

शैली के आधार पर वाक्यों के तीन भेद किए जाते हैं -

(i) शिथिल वाक्य, (ii) समीकृत और (iii) आवर्तक।

(i) शिथिल वाक्यः इसमें अलंकृत या मुहावरेदार वाक्य की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। वक्ता या लेखक मनमाने ढंग से बात कहता है। जैसे – 'एक थी रानी कुन्ती, उसके पाँच पुत्तर, एक का नाम युधिष्ठिर, एक का नाम भीम, एक का नाम कुछ और, एक का नाम कुछ और, एक का नाम भूल गया।' यह कथावाचकों आदि की शैली होती है।

(ii) समीकृत वाक्यः इसमें संतुलन और संगति का ध्यान रखा जाता है। जैसे - यस्यार्थाः तस्य मित्राणि (जिसके पास पैसा, उसी के मित्र), यतो धर्मस्ततो जयः, इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः, यथा राजा तथा प्रजा, जिसकी लाठी उसकी भैंस, न घर का न घाट का। समीकृत वाक्य विरोधमूलक भी होते हैं। जैसे - कहाँ हंस कहाँ बगुला, कहाँ राजा कहाँ रंक, कहाँ शेर कहाँ सूअर। समीकृत वाक्य सन्तुलन आदि गुणों के कारण लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो जाते हैं।

(iii) आवर्तक वाक्यः इसमें कथनीय वस्तु अन्त में दी जाती है। श्रोता की जिज्ञासा अन्तिम वाक्य सुनने पर ही पूर्ण होती है। यदि, अगर आदि लगाकर वाक्यों को लंबा किया जाता है। जैसे – 'यदि सुख चाहिए, यदि शान्ति चाहिए, यदि कीर्ति चाहिए, यदि अमरता चाहिए तो विद्याध्ययन में मन लगाओ।'

इस प्रकार से वाक्य के भेदों को देख सकते है।

१.१.६. निकटस्थ अवयव:

वाक्य एक संघटक है और संघटक तत्व अवयव कहलाते है। किसी साधन के समस्त संघटकों का पारस्परिक सम्बन्ध एक जैसा नहीं होता। उनमें से कतिपय एक-दूसरे से सुसंबंध होते है। इन सुसंबंध संघटकों को समीप या निकटस्थ अवयव कहते है। अर्थात वाक्य में प्रयुक्त पद या शब्द, जो स्थान की दृष्टि से नहीं, बल्कि अर्थ की दृष्टि से निकट या समीप होते हैं, उन्हें निकटस्थ अवयव कहा जाता है।

संस्कृत में निकटस्थ अवयव के संदर्भ में कहाँ है -

"यस्य येनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापि तस्य स: ।

अर्थतो ह्रसमानानाम् आनन्तर्यमकारणम् ।।"

जिसका जिससे अर्थमूलक सम्बन्ध है, वह दूर होने पर भी उसका ही है। अर्थ से असम्बंद्धों की समीपता भी सामीप्य का कारण नहीं। वस्तुतः अर्थ की समीपता ही समीपता है, स्थान की समीपता समीपता नहीं है। जैसे – शरीर अवयवों से बना होता है, उसी प्रकार वाक्य भी पदों या शब्दों से बना होता है।

जैसे – Is he coming? (क्या वह आ रहा है?)

इस उदाहरण में तीन अवयव है। परंतु स्थान की दृष्टि दे देखते है तो Is और he समीप है। किन्तु वास्तविक रूप में he की तुलना में coming के अधिक निकट है। अतः Is coming निकटम अवयव है। He और coming समीप होने पर भी अर्थ की दृष्टि से दूर होने से निकटम अवयव नहीं माने जाते है। यहाँ पर अधिक समझने के लिए हिंदी का एक वाक्य लेते है – 'मोहन का भाई बंबई भाग गया।' यहाँ पर 'भाई' का निकटम अवयव 'मोहन' है, जबकि 'गया' का निकटम अवयव 'बंबई' है।

भाषा में निकटम अवयवों की अन्विति होने से ही शुद्ध अर्थ का बोध होता है। वाक्यार्थ-बोध की दृष्टि से निकटम अवयवों का बहुत अधिक महत्व है। अन्वय बताने का अभिप्राय है कि इस पद का इस पद से निकटम संबंध है, अन्तः इन्हें पास रख कर श्लोक या पद्य का अर्थ ठीक समझा जा सकता है। जैसे –

संस्कृत – स सांयात्रिक:, यो व्यापारार्थ विदेशम् अगच्छत्, ह्यो गृहं प्रत्यागत: ।

हिंदी – वह समुद्री व्यापारी, जो व्यापार के लिए विदेश गया था, कल घर आ गया।

इसमें सांयात्रिक: (समुद्री व्यापारी) प्रारम्भ में है और प्रत्यागत: (आ गया, लौट आया) अंत में है, ये दोनों अर्थ की दृष्टि से निकटम अवयव हैं। इस वाक्य को हम निम्नप्रकार से समझ सकते है –

(क) उद्देश्य – स सांयात्रिक:, य: व्यापारार्थ विदेशम् अग अगच्छत्। (वह समुद्री व्यापारी, जो व्यापार के लिए विदेश गया था) इसमें जो 'व्यापार के लिए विदेश गया था' यह संज्ञा उपवाक्य है। व्यापारी विशेष्य है, 'वह' और 'समुद्री' उसके विशेषण हैं।

(ख) विधेय – 'कल घर आ गया।' क्रिया – 'आ गया', 'घर' सकर्मक क्रिया 'आ गया' का कर्म है, 'कल' क्रिया-विशेषण है। निकटम अवयवों का ठीक ज्ञान हो जाने पर वाक्य का अर्थ स्पष्ट होता है।

प्रत्येक भाषा के वाक्य-गठन में कुछ विशेषताएँ होती है, उन्हें उस भाषा के वक्ता और श्रोता जानते है, अतः उन्हें उनका अर्थ स्पष्ट होता है। अर्थात दूसरे शब्दों में यह कह सकते है कि भाषा से अनुवाद करने में शाब्दिक अनुवाद न करके भावात्मक अनुवाद अपेक्षित होता है। जैसे की संस्कृत, हिंदी और अंग्रेजी में 'मरना' शब्द का अर्थ अनेक प्रकार से प्रकट किया जाता है। दूसरी भाषा में उसका शाब्दिक अनुवाद अस्पष्ट होता है। जैसे –

संस्कृत - स पञ्चत्वं गतः, स दिवं ययौ, स प्राणान् अत्यजत्, स स्वर्गं ययौ, स भस्मावशेषोऽभूत् (वह मर गया)।

हिन्दी - वह स्वर्गवासी हो गए; उनका देहावसान हो गया; उनकी जीवन-लीला समाप्त हुई; वे वैकुण्ठवासी हो गए; वे अब नहीं रहे, वे चल दिए आदि कई प्रकार से कह सकते है।

अंग्रेजी - He died; He is dead; His life came to an end.

उपरोक्त वाक्यों से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक भाषा में अपनी भावाभिव्यक्ति का प्रकार पृथक् या स्वतन्त्र होता है। 'उसकी बातों से मेरा सिर चक्कर खाने लगा', 'चक्कर खाने' का अनुवाद अंग्रेजी 'Eating Circle' न होकर 'I am perturbed by his talks' अनुवाद किया जाएगा। अतः अर्थाभिव्यक्ति के लिए प्रत्येक भाषा के वाक्य गठन का ज्ञान अपेक्षित है।

कुछ स्थानों पर प्रकरण के अनुसार विशेषणों का अर्थ समझा जाता है। जैसे - वे सुन्दर फल और फूल, वे मनोहर कुमारियाँ और कुमार, खोटा पैसा और बेटा, कड़वी दवा और बात, शुद्ध हृदय मन और वचन। शुद्धं हृदयं मनो वचनं च, कटु औषधं वचनं च, सरला नारी गतिश्च। अंग्रेजी में - Old book dealer. इनमें दिए हुए विशेषण सुन्दर, मनोहर, शुद्धम्, कटु, old आदि केवल पहले शब्द के साथ भी लग सकते हैं और प्रकरण के अनुसार दूसरे शब्द के साथ भी। जैसे - सुन्दर फल एवं फूल, सुन्दर फल और सुन्दर फूल। पहले अर्थ में 'सुन्दर' केवल फल का विशेषण है, फूल का नहीं। दूसरे अर्थ में दोनों का विशेषण है।

इसी प्रकार Old book dealer के दो अर्थ हो सकते हैं – १. पुरानी किताबों को बेचने वाला, २. पुराना पुस्तक-विक्रेता। यहाँ पर पहले अर्थ में old पुस्तक का विशेषण है और दूसरे अर्थ में विक्रेता का।

वक्ता के स्वभाव का ज्ञान भी निकटतम अवयव के निर्धारण में सहायक होता है। जैसे – 'मैं अभी आया था' के स्थान पर 'मैं आया था, अभी' प्रयोग। निकटतम अवयव के ज्ञान के लिए 'वाक्य-सुर' का ज्ञान भी अपेक्षित होता है। एक ही वाक्य कहने के टोन के आधार पर सामान्य, प्रश्नवाचक, विस्मयवाचक आदि हो जाता है। जैसे - हाथ उठा (ऊपर उठा), हाथ उठा (हाथ ऊपर उठाओ), चोर भगा (भाग गया), चोर भगा (चोर को भगावो) आदि।

१.१.७. अंत: केंद्रित और बहि: केंद्रित संरचना:

वाक्य रचना की दृष्टि से सभी रचनाओं को दो भागों में बाँटा जाता है –
१. अंत: केन्द्रिक (Endo-Centric), २. बहि: केंद्रिक (Exo-Centric)

१. अंत: केन्द्रिक (Endo-Centric) –

अन्तःकेन्द्रिक रचना उसे कहते हैं, जिसका केन्द्र उसी में हो। 'लड़का' और 'अच्छा लड़का' में वाक्य के स्तर पर कोई अन्तर नहीं है। 'लड़का जाता है' भी कह सकते हैं और 'अच्छा लड़का जाता है' भी। यहाँ प्रमुख शब्द 'लड़का' है। वाक्य के स्तर पर व्याकरणिक रचना की दृष्टि से अच्छा लड़का वही हैं जो 'अच्छा लड़का है'। यहाँ – 'अच्छा लड़का' अन्तः केन्द्रिक रचना है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यदि रचना (पदों का समूह) गठन की दृष्टि से अपने एक या अधिक पदों के समान है तो उसे अन्तः केन्द्रिक कहेंगे।

२. बहि: केंद्रिक (Exo-Centric) –

अन्तःकेन्द्रिक के विपरीत वाक्य को बहि: केन्द्रिक कहा जाता है । इसमें एक या कुछ शब्द पूरी रचना के स्थान पर नहीं आ सकते । जैसे - 'कलम से' ऐसी ही रचना है। इसमें न 'कलम' 'कलम से' का स्थान ले सकता है और न 'से' 'कलम से' का। यहाँ दोनों ही आवश्यक हैं, किसी के अभाव में वाक्य-संरचना का कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। यहाँ दोनों घटकों के अलग-अलग कार्य है। इन दोनों घटकों में से किसी का केन्द्र इस रचना में नहीं है अर्थात् वह बाहर है। अंतः यह बहि:केन्द्रिक रचना है। 'देश से', 'बम्बई की ओर', 'घोड़े को', 'पानी में' आदि ऐसी ही रचनाएं हैं।

अन्तःकेन्द्रिक रचना दो प्रकार की होती हैं- संवर्गी (Coordinative) जैसे -'राम और मोहन' तथा आश्रित-वर्गी (Subordinative) जैसे अच्छा लड़का। आश्रित-वर्गी में एक या कुछ शब्द मुख्य (head) होते हैं तथा शेष आश्रित । और संवर्गी में दोनों मुख्य होते हैं । 'अच्छा लड़का बहुत तेज, खूब चलता है।' में 'अच्छा', 'बहुत', 'खूब' आश्रित हैं। 'बहुत तेज लड़का' जैसी रचना में- लड़का मुख्य है शेष उसके आश्रित । इनमें तेज आश्रित है, 'बहुत' तेज का आश्रित।

इन भेदों को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है -

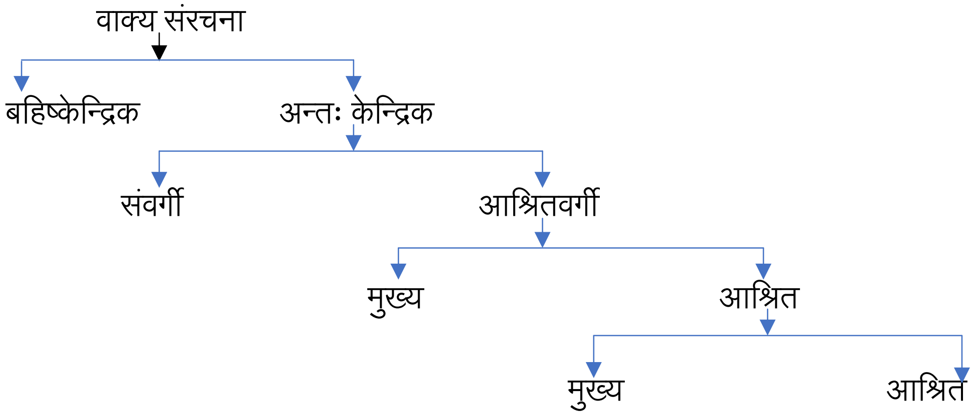

१.३ सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद छात्रों ने वाक्य विज्ञान क्या है इसकी जानकारी हासिल की है। विशेषत: इसमें वाक्य विज्ञान की परिभाषा, अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद के साथ-साथ वाक्य विज्ञान के तत्व, उसके भेद, निकटस्थ अवयव को जाना है।

१.४ अतिलघुत्तरीय प्रश्न

१) "भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है।" यह परिभाषा किस विद्वान की है?

२) अभिहितान्वयवाद के प्रवर्तक है -

३) वाक्य विज्ञान में वाक्य से पदों को अलग करने की प्रक्रिया को क्या कहते हैं?

१.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१) वाक्य विज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

२) वाक्य विज्ञान में अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद को संक्षिप्त में बताइएँ।

३) अंत: केन्द्रिक की संक्षिप्त में चर्चा कीजिए |

४) बहि: केन्द्रिक संरचना क्या है, उसे स्पष्ट कीजिए |

१.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) वाक्य विज्ञान की परिभाषा स्पष्ट करते हुए अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद को विस्तार से लिखिए।

२) वाक्य विज्ञान के भेदों पर विस्तार से प्रकाश डालिए |

३) निकटस्थ अवयव को सोदाहरण समझाइए |

४) वाक्य विज्ञान के अनिवार्य तत्व कौन-कौन से है, उस पर प्रकाश डालिए |

१.७ संदर्भ ग्रंथ

१. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२. भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३. सामान्य भाषा विज्ञान - डॉ. बाबुराव सक्सेना

४. हिंदी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु

५. हिंदी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी

६. आधुनिक भाषा विज्ञान के सिध्दांत - डॉ. राम किशोर शर्मा

❖❖❖❖

२

अर्थ परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा :

२.०. इकाई का उद्देश्य

२.१. प्रस्तावना

२.२. अर्थ विज्ञान : अवधारणा

२.३. शब्द और अर्थ का संबंध

२.४. अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

२.५. अर्थ परिवर्तन के कारण

२.६. सारांश

२.७. अतिलघुत्तरीय प्रश्न

२.८. लघुत्तरीय प्रश्न

२.९. दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.१० संदर्भ ग्रंथ

२.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित विषयवस्तु से आपका परिचय होगा -

- हिन्दी भाषा के संदर्भ में अर्थ विज्ञान की जानकारी प्राप्त कर पाएँगे।
- अर्थ विज्ञान का शब्द और अर्थ से संबंध का विश्लेषण कर पाएँगे।
- अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ और भाषा पर उसका प्रभाव की समीक्षा कर पाएँगे।
- अर्थ परिवर्तन के कारण की जानकारी प्राप्त कर पाएँगे।

२.१ प्रस्तावना

अर्थविज्ञान के विवेच्य विषय हैं - अर्थ क्या है? अर्थ का ज्ञान कैसे होता है? शब्द और अर्थ में क्या संबंध है? अनेकार्थक शब्द के अर्थ का निर्णय कैसे किया जाता है? अर्थ में परिवर्तन क्यों और कैसे होता है? बिना अर्थ का विचार किए भाषा का विवेचन अधूरा रहेगा।

हमारे यहाँ अर्थ का महत्व बहुत प्राचीन काल से माना जाता रहा है, जैसा यास्क के "निरूक्त" से अनेकत्र प्रमाणित होता है। यास्क ने कहा है कि जिस प्रकार बिना अग्नि के शुष्क ईंधन प्रज्वलित नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना अर्थ समझे जो शब्द दुहराया जाता है, वह कभी अभीप्सित विषय को प्रकाशित नहीं कर सकता।

यद्धीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्जवलति कर्हिचित्।

- (महाभाष्य आ. १)

कहने का तात्पर्य यह कि अर्थ के अभाव में भाषा का कोई महत्व नहीं है। शब्द तो अर्थ की अभिव्यक्ति का ही माध्यम है। इसको ऐसे भी कह सकते है कि शब्द अमूर्त अर्थ का मूर्त रूप है या शब्द शरीर है तो अर्थ आत्मा। जिस तरह शरीर की सहायता से ही आत्मा का प्रत्यक्षीकरण होता है, उसी प्रकार शब्द की सहायता से ही अर्थ का बोझ होता है।

२.२ अर्थ विज्ञान : अवधारणा

अर्थ-विज्ञान भाषा-विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है। सार्थकता भाषा की आत्मा है। अर्थ के अभाव में भाषा निर्जीव तथा निरर्थक ध्वनियों का जालमात्र है। अर्थ शब्द की आत्मा है और शब्द शरीर है। अर्थ-विज्ञान में शब्दार्थ के आंतरिक पक्ष का विवेचन, विश्लेषण किया जाता है। जिस प्रकार शरीर के ज्ञान के बाद आत्मा का ज्ञान अपेक्षित है, उसी प्रकार ध्वनि, पद, वाक्य के ज्ञान के बाद अर्थरूपी आत्मा का ज्ञान अपेक्षित एवं अनिवार्य है।

अर्थ-विज्ञान के क्षेत्र में अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने उल्लेखनीय कार्य किया है। इन विद्वानों ने अपने-अपने ग्रंथों में अर्थ के स्वरूप, महत्व तथा लक्षण पर प्रकाश डाला है। आचार्य पाणिनी ने भाषा का सार "अर्थ" को माना है। इसी कारण उन्होंने अर्थवान या सार्थक शब्द को ही "प्रतिपादिक" माना है।

महर्षि पतंजलि ने "महाभाष्य" में लिखा है - अर्थज्ञान के बिना जो शब्द मूल पाठ के रूप में दोहराया जाता है। वह उसी प्रकार ज्ञान को प्रज्वलित नहीं करता जैसे बिना अग्नि में डाला हुआ सूखा ईंधन। पतंजलि अर्थ को शब्द की आंतरिक शक्ति मानते है। ऋग्वेद के एक मंत्र में 'अर्थज्ञ' को अजेय योद्धा बताया गया है। अर्थ ज्ञानहीन को बिना दूधवाली गाय एवं फल फूलहीन वाणी का संग्रहकर्ता बताया है। इससे स्पष्ट है कि भाषा की सार्थकता अर्थ में है। अर्थ ही भाषा का सर्वस्व है। अर्थहीन भाषा सन्तानहीन स्त्री के समान है। अर्थ के संदर्भ में भर्तुहरि ने लिखा है -

"यस्मिन्स्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थ: प्रतीयते।
तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्।।"

शब्द के उच्चारण से जब जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है, अर्थ का कोई दूसरा लक्षण नही हैं। अर्थ की महता के सम्बन्ध में हमारे यहाँ प्राचीन काल से ही विचार होता रहा है। इस सम्बन्ध में भर्तृहरि ने महर्षियों के प्रमाण को स्वीकार किया है और कहा है-

"निप्या: शब्दार्थसम्बन्धा: समाम्नाता महर्षिभि:"

अर्थात महर्षियों ने शब्दार्थ सम्बन्धों को नित्य माना है।

अर्थ का ज्ञान अपेक्षित एवं अनिवार्य है। अर्थ का ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति कितना अभागा है यह वेदों के एक प्रसिद्ध कथन में व्यक्त किया गया है -

"उतत्व: पश्यन्त दूदर्श वाचमुत त्व: श्रण्वत्र श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वरमै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासा:"।।

अर्थात एक मुर्ख मनुष्य जो अर्थ का ज्ञान रखता, केवल (शब्दों को) कष्ठाग्र कर लेता हैं वह वाणी को देखते हुए भी नहीं देखता - अर्थात अर्थ शून्य होने के कारण उससे लाभ नहीं उठा सकता। वही वाणी अर्थ जानने वाले व्यक्ति के लिए अपने शरीर को उसी प्रकार खोलकर रख देती है जैसे उत्तम वस्त्र धारण किए हुए कामवाली स्त्री अपने पति के सामने शरीर को खोल देती है।

भाषाविज्ञान में अर्थविज्ञान का कोई स्थान है अथवा नहीं इस सम्बन्ध में एकमत नहीं है। पहले अर्थहीन का भाषाविज्ञान में कोई स्थान नहीं था। अर्थविज्ञान को दर्शनशास्त्र का ही अंग माना जाता था। भाषाविदों ने अर्थविज्ञान को भाषाविज्ञान का बाह्यस्तर माना है, अर्थात अर्थविज्ञान का सम्बन्ध भाषा से सीधा नहीं, वरन भाषा के बाहर के तत्वों से है। आधुनिक युग में पाश्चात्य भाषाविदों ने अर्थ पर वैज्ञानिक ढंग से विचार किया है। इसी का परिणाम है कि अब अर्थविज्ञान को भाषा-विज्ञान की एक शाखा के रुप में मान्यता मिल गई है|

२.३ शब्द और अर्थ का संबंध

भाषा में उपयोगिता अर्थ की होती है, किन्तु अर्थ भी तो शब्द रूप होता है। क्या वह शब्द रूप अर्थ है? सभी जानते है कि मधु शब्द का अर्थ है 'शहद' किन्तु शब्द रूप 'शहद' अर्थ नहीं है वस्तु रूप शहद अर्थ है। परंपरा रूप में किसी विशिष्ट शब्द का विशिष्ट अर्थ मान लिया जाता है। शब्द और अर्थ में सीधे वह सम्बन्ध नहीं है, जो अग्नि और जलन में है। हम मुँह में अग्नि शब्द का उच्चारण करते हैं, किन्तु मुँह नहीं जलता। 'इमली' कहते है किन्तु मुँह खट्टा नहीं होता। 'पानी' कहते हैं तो प्यास नहीं बुझती। शब्द और अर्थ का कोई स्वाभाविक और सहज सम्बन्ध नहीं है। समाज ने यह परंपरा से सम्बन्ध मान लिया है। समाज ने विभिन्न शब्दों को विभिन्न अर्थों के प्रतीक के रुप में स्वीकार कर लिया है। शब्द विशिष्ट अर्थों के प्रतीक या संकेत हैं, इसीलिए उन शब्दों के प्रयोग से श्रोता उन्हीं अर्थों में ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए समाज ने 'पानी' शब्द को 'पानी' द्रव्य के लिए संकेत या प्रतीक मान रखा है, इसीलिए पानी कहने से उसी का बोध होता है, किसी और चीज का नहीं। कल समाज यह निर्णय कर ले कि 'पानी' शब्द किसी और वस्तु का वाचक माना जाएगा तो कल से 'पानी' शब्द का अर्थ पानी न रहकर बदल जाएगा।

कुछ भाषाविद् शब्द और अर्थ का सम्बन्ध मानते हैं। दोनों को भाषा का शरीर एवं आत्मा माना जाता है। पतंजलि के अनुसार शब्द द्वारा अर्थ की प्रतीति या अभिव्यक्ति होती है। इन दोनों का सम्बन्ध नित्य या परस्पर सम्बन्ध है।

भर्तृहरि शब्द और अर्थ एक दूसरे से अभिन्न मानते हुए लिखते हैं कि शब्द और अर्थ एक ही आत्मा के दो रूप है, तथा दोनों की स्थिति अभिन्न है। इन दोनों में प्रकाश्य प्रकाशन एवं कार्यकारक का सम्बन्ध है।

गोस्वामी तुलसीदास भी शब्द और अर्थ में घनिष्ठ सम्बन्ध को स्वीकारते है। जैसे - "मीरा अरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न-न-भिन्न" डॉ. शिलर तथा नान चॉमस्की भी शब्द और अर्थ का घनिष्ठ सम्बन्ध मानते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों तथा विद्वानों के मतों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध घनिष्ठ है, तथा वे एक दूसरे पर आश्रित हैं।

२.४ अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। भाषा में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता रहता है उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के अर्थो में भी परिवर्तन होता रहता है। अर्थ -परिवर्तन मानवी मस्तिष्क की एक प्रमुख विशिष्टता है। अतएवं उसके सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है कि कब किस परिस्थिति में कौन-सा शब्द किस दिशा में विकसित हो जाए। कभी -कभी शब्द का व्यापक अर्थ में व्यवहार होने लगता है, कभी उसका अर्थ अत्यंत संकुचित अर्थों में ग्रहण किया जाने लगता है। उसके उल्टे कदाचित कोई नया अर्थ आकर प्राचीन प्रचलित अर्थ को पदच्युत कर देता है।

अर्थ - परिवर्तन की यह प्रक्रिया जिस दिशा में होती है, इसे ही अर्थ-विकास या परिवर्तन की दिशा कहते है।

कुछ विद्वान अर्थ - परिवर्तन की तीन तो कुछ छह दिशाएँ मानने के पक्ष में हैं। मुनि यास्क अर्थपरिवर्तन की प्रमुख तीन दिशाएँ मानते हैं। १) अर्थ विस्तार २) अर्थसंकोच और ३) अर्थदेश |

प्रसिद्ध भाषाविद बील, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, डॉ. शिवनाथ, डॉ. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वानों ने भी अर्थ परिवर्तन की तीन दिशाएँ मानी है। अर्थ के अच्छे और बुरे भाव की दृष्टि से तिवारी ने अर्थ परिवर्तन की दो दिशाएँ मानी है।

डॉ. श्यामसुन्दरदास ने अर्थ-परिवर्तन की छह दिशाएँ मानी हैं अर्थ - परिवर्तन की निम्नलिखित दिशाएँ है।

१) अर्थ विस्तार

२) अर्थ संकोच

३) अर्था देश

४) अर्थोत्कर्ष

५) अर्थोपकर्ष

६) अर्थोपदेश

१) अर्थ विस्तार :

कभी-कभी ऐसा होता है कि एक शब्द का प्रयोग सीमित अर्थों में होता है, परंतु कालान्तर में उस शब्द का विस्तृत अर्थ में प्रयोग होने लगता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अपने सीमित अर्थ को छोड़कर व्यापक अर्थ को ग्रहण कर लेता है। शब्दों की इस प्रवृत्ति को अर्थ विस्तार कहा जाता है। जैसे -

कुशल : पहले कथाओं को काटकर लाने वाले को कुशल कहा जाता था, पर अब अर्थ-विस्तार के कारण किसी भी काम में कुशल हो सकता है।

तेल : पहले तिल के तेल को कहते थे, पर अब नारियल, सरसो, मिट्टी का तेल भी तेल ही कहलाया जाता है।

कल : संस्कृत में आने वाले दिन को कहा जाता था, पर अब बिता हुआ, दिन भी कल कहा जाता है।

अभ्यास : पहले बाण फेकने के अर्थ में पर अब हर वस्तु का अभ्यास होता है। मराठी में इसका अर्थ पढ़ना है।

स्याह : पहले काले रंग को स्याह कहते थे। पहले स्याही काली होती थी परंतु आज नीली, लाल, हरी भी स्याही होती है।

निपुण : पुण्य करने वाला निपुण होता था पर अब बेइमानी करने वाला भी अपनी कला में निपुण माना जाता है।

प्रवीण : पहले अच्छी वीणा बजाने वाले को प्रवीण कहा जाता था, आज वह किसी भी कार्य में चतुरता दिखलाने के अर्थ में विकसित हो गया है - चोरी करना भी एक प्रकार की चतुरता है ।

गोहार : पहले गाय को पुकारने को गोहार कहा जाता था पर अब हर प्रकार की पुकार गोहार है ।

अधर : पहले नीचे का ओठ अधर कहलाता था पर अब दोनों ओठों को अधर कहा जाता है।

सब्जी : प्रारंभ में केवल हरी सब्जी, सब्जी थी पर अब, लाल, पीली यहाँ तक की आलू भी सब्जी है।

गोशाला : गायों के रहने का जो स्थान है उसे गोशाला कहा जाता था पर अब उसमें बैल, भैंस, बकरी आदि भी बाँधते है, फिर भी गोशाला नाम है।

महाराज : पहले राजा महाराजाओं के लिए महाराज कहा जाता था, पर अब किसी भी भद्र पुरुष को महाराज कहते हैं। यहाँ तक कि महाराज रसोइयाँ के अर्थ में प्रसिद्ध है।

पत्र : पहले वृक्ष के पते को पत्र कहते थे। लेकिन आज कागज पर लिखी गई चिट्ठी पत्र कही जाती है।

इसी प्रकार बैल, पशु, गधा, उल्लू आदि शब्दों का आज विस्तार हो गया है। ये शब्द मुर्ख का अर्थ बताने लगे है।

२) अर्थ संकोच :

भाषा का विकास परंपरा में कभी-कभी देखा जाता है कि जो शब्द विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त होते थे, वे बाद में संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होने लगे हैं। भाषाविद श्रील ने कहा है कि राष्ट्र या जाति की सभ्यता जितनी अधिक विकसित होगी उसकी भाषा के अर्थ - संकोच के उदाहरण उतने ही अधिक होंगे। अर्थसंकोच के कारण किसी शब्द का प्रयोग सामान्य था, विस्तृत अर्थ से हटकर विशिष्ट या सीमित अर्थ में होने लगता है। जैसे -

असुर : वैदिक साहित्य में "असुर" शब्द का प्रयोग देवताओं तथा राक्षसों दोनों के लिए हुआ है पर अब केवल दैत्यों के लिए प्रयुक्त होने लगा है।

मृग : पहले पशु का वाचक था पर अब हिरण के लिए प्रयुक्त होता है।

गो : संस्कृत में इसका अर्थ है गमन करनेवाला पर अब गो गाय के लिए प्रयुक्त होता है।

भार्या : पहले जिसका भरण -पोषण किया जाए अर्थात पत्नी। यद्यपि आज की कई पत्नियाँ भरण-पोषण की अपेक्षा नहीं रखती। आज कई पत्नियाँ पति का भरण-पोषण करती हैं।

श्राद्ध : जो काम श्रद्धा के साथ किया जाता है वह श्राद्ध था, पर अब मरने के बाद श्राद्ध किया जाता है।

स्वाद : पहले जो खाने योग्य पदार्थ पर अब स्वाद।

वेदना : सुख - दु:ख दोनों की होती थी, अब केवल दु:ख की वेदना।

घृणा : दया और घृणा अब केवल नफरत।

बू, गंध, बास : पहले अच्छी बुरी दोनों अब केवल बुरी गंध।

घृत : सींचना - घी पानी दोनों से पर अब केवल घी।

मुर्ग : पहले अर्थ चिड़िया, अब केवल मुर्ग।

वत्स : किसी का भी बच्चा, अब केवल मनुष्य का बच्चा|

बाछा : किसी का बच्चा, अब केवल गाय का बच्चा।

बछेड़ा : बच्चा, अब केवल घोड़े का बच्चा।

पाड़ा : बच्चा, अब केवल भैंस का बच्चा।

छौंना : बच्चा, अब केवल सुअर का बच्चा।

मेमना - बच्चा, अब ये भेड़ का बच्चा|

पृथ्वी : फैली होने के कारण पृथ्वी (भूमि) नाम पड़ा। परंतु हर फैली हुई चादर, तम्बू आदि को पृथ्वी नहीं कहते।

मनुष्य : पहले मनन चिंतन करने वालों को मनुष्य कहते थे। आज मनुष्य एक जातिवाचक नाम हो गया। अत: चिन्तक और मुर्ख सभी मनुष्य है।

सर्प : पहले रेंगनेवाला अब केवल साँप।

सभ्य : सभा में बैठने वाला सभ्य था। आजकल सभ्य का अर्थ शिष्ट है। समास, विशेषण, उपसर्ग तथा प्रत्यय के कारण भी शब्दों का अर्थ संकुचित हो गया।

३) अर्था देश :

अर्थ विस्तार और अर्थ संकोच में अर्थ बदलता है, फिर भी मूल अर्थ सर्वथा लुप्त नहीं हो जाता। अर्थादेश वहाँ होता है जहाँ शब्द का मूल अर्थ ही जाता रहता है। उसके स्थान पर उसमें किसी अन्य अर्थ की प्रतीति होने लगती हैं। अर्थादेश में किसी शब्द का मूल अर्थ पूर्णतया लुप्त हो जाता है और उसके स्थान पर एक नया अर्थ प्रचलित हो जाता है। इस प्रकार जब किसी शब्द का मूल अर्थ पूर्ण अर्थ से ही लुप्त हो जाए और उसके स्थान पर नया अर्थ प्रचलित हो जाए वहाँ अर्थादेश होता है। जैसे -

राक्षस : इसका मूल अर्थ बहादूर या रक्षा करने वाला था, परंतु कालान्तर में अपने इस अर्थ को त्यागकर सर्वथा नवीन हिंसक, कुख्यात अर्थ के लिए प्रयुक्त होने लगा।

सह : संस्कृत में सह् धातु का अर्थ था विजय या जीतना। बाद में इसका अर्थ हो गया सहन करना।

दुहितृ : इसका मूल अर्थ था गाय दोहने वाली। बाद में अर्थ हो गया लड़की पुत्री।

मेये : मूल अर्थ था माता, पर अब लड़की या पत्नी।

अनुग्रह : मूल अर्थ था पीछे से सहारा देना, पर अब अर्थ है कृपा।

गँवार : इसका मुल अर्थ गाँव का रहने वाला, व्यक्ति पर अब अर्थ है मूर्ख व्यक्ति।

मौन : मौन शब्द मूलत: मुनियों के कर्म को कहते थे। आज वह चुप्पी का वाचक है।

देवानां प्रिय : देवों को प्रिय, पर अब मुर्ख।

पाखंड : अशोक के समय एक संप्रदाय बना। इन्हें दान दिया जाता था। आज इसका अर्थ ढोंग, दिखाया हो गया है।

आकाशवाणी : इसका मूल अर्थ था देवताओं की वाणी, अब All India Radio के लिए प्रयुक्त होता है।

साहस : मूल अर्थ चोरी, डकैती, अब उत्साहपूर्ण कार्य।

मुग्ध : मूल अर्थ मूर्ख, अब मोहित करना, इसका विकसित रूप कपड़ा है। यह अच्छे कपड़ों के लिए प्रयुक्त होता है।

हरिजन : मूल अर्थ "ईश्वर का भक्त" आज अस्पृश्य या अछूत जाति का वाचक है।

उष्ट्र : वेदिक काल में अर्थ था 'भैंसा' किन्तु कालान्तर में वह ऊँट का वाचक बन गया है। अँग्रेजी में Sky शब्द का अर्थ था बादल, पर आज वह आकाश का वाचक हो गया हैं। Constable का अर्थ था घुड़साल का सहायक पर आज अर्थ है पुलिस। Gate का अर्थ मार्ग था रास्ता पर बाद में अर्थ हो गया फाटक या दरवाजा।

४) अर्थोत्कर्षं :

अर्थ का उत्कर्ष अर्थोत्कर्षं कहलाता है - जब कोई शब्द बुरे अर्थ को छोड़कर अच्छे अर्थ को ग्रहण कर लेता है - तब अर्थोत्कर्षं माना जाएगा। अर्थ का ऊपर उठना खराब से अच्छा बन जाना अर्थोत्कर्ष है। जैसे -

साहस : पहले व्यभिचार, हत्या, चोरी, डकैती, अब हिम्मत।

फिरंगी : पहले पुर्तगाली डाकू का वाचक अब यूरोपियन।

इंडियन : पहले घृणा से गुलाम, अब गर्व से हम इंडियन कहते हैं।

मुग्ध : पहले मूर्ख, आज मोहित, आशिक, सुंदर का वाचक।

पदार्थ : पहले सामान्य वस्तू, आज उत्तम वस्तु स्वादिष्ट पदार्थ।

५) अर्थोपकर्ष :

जिन शब्दों के अर्थो में मूल अर्थ की अपेक्षा गिरावट आ जाती है, जब अर्थ अच्छे से बुरा बन जाए तब अर्थपकर्ष माना जाएगा। जैसे -

शब्द	**मूल अच्छा पदार्थ**	**बुरा अर्थ**
भैया	भाई का वाच	बंबई में दूध वाला
बौद्ध	जाग्रत, जिससे आत्मबोध हुआ हो।	बौद्ध धर्म
पाखंड	एक संप्रदाय	ढोंग
पुंगव	अच्छा, श्रेष्ठ	मुर्ख
जुगुप्सा	छिपाने की इच्छा	घृणा
क्रोष्टा	चिल्लाकर बोलना	गीदड़
गर्भिणी	गर्भवर्ती स्त्री	केवल पशु के लिए
नग्न लुंचित	जैनियों में जो साधु नंग रहते थे और केश लुंच करते थे	नंगा, लुच्चा, चरित्रहीन
ब्रह्माबंधू	ब्रह्मणों के हितैषी	निंघ कर्म करनेवाला
वज्रबटुक	बह्मचारी	मूर्ख

अभियुक्त	प्रामाणिक विश्वसनीय पुरुष	आरोपी
महाब्राह्मण	महान ब्राह्मण	स्मशान भूमि में मृतकों के वस्त्र बटोरने वाला ब्राह्मण
गुरु	आदर्श गुरुजन	बदमाश
पिल्ले	पुत्र का बच्चा	कुत्ते का वाचक
वेश्या	संस्कृत में अर्थ था जो अच्छे वस्त्र पहनकर लोगों को आकर्षित करने वाली स्त्री	व्याभिचारी स्त्री
गुलाम	लड़का	नौकर
शौच	पवित्र कार्य	मल त्याग

६) अर्थोपदेश :

अशूभ, अमंगकारी, अप्रिय अर्थो के बोधक शब्दों के स्थान पर मृदु, मंगलकारी तथा प्रिय लगने वाले शब्दों का प्रयोग अर्थाप्रदेश कहलाता है। जैसे - संस्कृत में मृत्यु होने पर 'पंचत्वगन', 'दिवगंत', हिन्दी में 'स्वर्ग सिधार' कहते हैं। प्रात:कालीन कार्य को 'शौच' कहते है। वैधव्य के लिए 'चुडी टूटना' दुकान बंद करने के लिए 'दुकान बढ़ाना' दिया बुझाने के लिए 'दिया बढ़ाना' चेचक के लिए 'माता' जेल की 'ससुराल' कैदी के लिए 'शाही मेहमान' गर्भवती के लिए 'पाँव भारी होना' आदि शब्दों का प्रयोग अर्थाप्रदेश के उदाहरण है।

२.५ अर्थ परिवर्तन के कारण

ब्लूम फिल्ड ने अर्थ परिवर्तन की व्याख्या करते हुए लिखा है - वे नवचरन जिनके द्वारा व्याकरणिक कार्यकारिता में परिवर्तन होकर कोशीय अर्थ में परिवर्तन होता है। उन्हें अर्थ परिवर्तन की कोटि में रखते हैं। अर्थ का शब्दार्थ यद्यपि काल्पनिक एवं सांकेतिक है, परंतु अर्थबोध का साक्षात सम्बन्ध मन से है। मानव मन गतिशील, चंचल, भावुक, संवेदनशील एवं नवीनता का प्रेमी है। अत: विभिन्न परिस्थितियों में मानव मन की एक सी स्थिति नहीं होती। यही कारण है कि राग-द्वेष, क्रोध, घृणा, आवेश आदि में उच्चारित शब्दों के अर्थो में अंतर आ जाता है। अर्थ परिवर्तन प्रारंभ में व्यक्तिगत होता है। परंतु बाद में समाज के द्वारा स्वीकृत होने पर भाषा में ग्रहण कर लिया जाता है और भाषा का अंग बन जाता है। इस प्रकार अर्थ परिवर्तन की समस्त प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक हैं।

भारतीय काव्यशास्त्रियों - मम्मट, विश्वनाथ, पंडितराज, जगन्नाथ आदि ने अर्थभेद, या अर्थ परिवर्तन के कारण रूप में लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्तियों का सूक्ष्मतम विवेचन किया है। पाश्चात्य विद्वानों में प्रो. टकर एवं मिशेल ब्रेआल ने इसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। डॉ. तारापुरवाला ने अपनी पुस्तक Element of the Science of Language में प्रो. टकर के अनुसार अर्थ - परिवर्तन के बारह कारण माने हैं। कुल मिलाकर अर्थ - परिवर्तन के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।

बल का अपसरण :

किसी शब्द के प्रधान अर्थ से हटकर बल गौण अर्थ पर आ जाना बल का अपसरण कहलाता है। जैसे -

गोस्वामी : गायों का स्वामी, पहले गायों का स्वामी धनी माना जाता था। परिणामत: गोस्वामी मानवीय था। अब गोसाई एक जाति हो गई है।

जुगुप्सा : जुगुप्सा शब्द मूलत: 'गुप' रक्षण धातु से बना है। 'गुप' का अर्थ है रक्षण करना। गायों की रक्षा करना ही उसका मूल अर्थ था। पालन छिपाकर भी किया जाता है। अत: छिपाना अर्थ हुआ। यही अर्थ प्रधान हो गया। छिपाना घृणित वस्तु होती है, अत: घृणित कार्य है। अब घृणा अर्थ हो गया। निंदा भी अर्थ हो गया।

गुलाम : 'गुलाम' शब्द का मूल अर्थ था "लड़का" नौकर के रूप में लोग लड़के रखने लगे। अत: गुलाम अर्थ हो गया।

पीढ़ी परिवर्तन : यह अनिवार्य नहीं कि किसी शब्द का जो एक अर्थ एक पीढ़ी के लिए है, वही दूसरी पीढ़ी के लिए भी हो। पीढ़ी दर पीढ़ी अर्थ में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है। जैसे -

पत्र : पहले पते पर लिखा जाता था। दूसरी पीढ़ी ने अर्थ ग्रहण कर लिया कि जिस पर लिखा जाए वह पत्र। परिणामत: भोजपत्र अर्थ हुआ। जिस पर लिखा जाए, वह पतली-चपची वस्तु पत्र समझी जाने लगी। सोने के पत्र चाँदी का पत्र आदि अर्थ बना। अब वह लिखित पत्र Letter का बोधक हो गया।

अन्य भाषाओं से शब्द उधार लेना :

जब हम किसी दूसरी भाषा में से शब्द उधार लेते है, तो उसके मूल अर्थ में हम अपना नया अर्थ भी जोड़ देते हैं। जैसे -

फारसी मुर्ग : यह पक्षी का वाचक है। पर हमारी भाषा में आकर वह मुर्गा बन गया। पक्षी सामान्य से पक्षी विशेष बन गया।

दीवार : यह शब्द रोम से आया। इसका अर्थ चाँदी या सोने का सिक्का था। भारत में यह केवल सोने के सिक्के (अशर्फी) के लिए प्रयुक्त होता है।

एक भाषा - भाषी लोगों का विखर जाना:

जब किसी कारणवश एक भाषा - भाषी लोगों का समूह विखर जाता है, तो वह अपनी शब्दावली भी साथ ले जाता है। उनका एक-दूसरे से सम्पर्क टूट जाता है। परिणामत: एक शब्द दूसरे स्थान पर भिन्न अर्थ देता है। जैसे -

संस्कृत	**हिन्दी**	**बंगाली**	**गुजराती**
नील	नील	+	लीलो (हरा)
वाटीका	वारी	थर	वाड़ी (Garden)
मृग (पशु)	पशु-विशेष	पशुविशेष	पंशुविशेष

हिन्दी चेष्टा, मराठी मे मजाक हो गया, हिन्दी शिक्षा मराठी में सजा हो गया है।

परिवेश भेद : परिवेश या वातावरण में अंतर हो जाने के कारण शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। यह परिवेश भेद अनेक कारणों से हो सकता है।

भौगोलिक वातावरण :

परिवेश या वातावरण में अंतर हो जाने के कारण शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। अपनी प्रिय वस्तुओं के नाम अन्यत्र जाकर भी लोग रखते हैं। वेद मे 'उष्ट्र' शब्द भैंसा के अर्थ में है बाद में 'उष्ट्र' का प्रयोग ऊँट के अर्थ में होने लगा। इसका कारण आर्यों का भौगोलिक परिवेश परिवर्तन ही है।

'CORN' शब्द के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अर्थ हैं - इंग्लैड में गेहूँ, स्काटलैंड में 'बाजरा' तथा अमेरिका में 'मक्का'। इसका एक मनोरंजक उदाहरण इस प्रकार है विश्वयुद्ध के समय अंग्रेजों ने अमेरिका से 'Corn' गेहूँ मँगाया था। अमेरिका ने अपने अर्थ के अनुसार 'मक्का' भेज दिया बाद में जाँच कराने पर भेद खुला। हिन्दी में 'खोता', 'खोती', समय नष्ट करने का अर्थ देते है - समय खोता, समय खोती है। पर पंजाब में 'खोता' (गधा), 'खोती' (गधी) के अर्थ में प्रयुक्त होते है। इसी प्रकार पश्चिमी उ.प्र. में लाला का अर्थ वैश्य है। पूर्वी उ.प्र. में कायस्थ है। उ.प्र. में 'ठाकुर' का अर्थ 'क्षत्रिय' बिहार में 'नाई' और बंगाल में 'रसोइया' है।

सामाजिक परिवेश भेद :

समाज में परिवेश भेद से अर्थ भेद हो जाता है। अँग्रेजी में Mother, Father, Sister, Brother आदि शब्द विभिन्न सामाजिक वातावरण में विभिन्न अर्थो में प्रयुक्त होते हैं। परिवार में ये शब्द 'माता', 'पिता', 'बहन', 'भाई' अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अस्पताल में 'मदर' - मैट्रन के लिए 'सिस्टर' और नर्स के लिए रोमन कैथोलिक चर्च में 'फादर' पादरी (पुरोहित) के लिए तथा 'ब्रदर' 'सहयोगी पादरी' के लिए प्रयुक्त होते है।

हिन्दी में 'भाई' शब्द - साथी, मित्र, हितैषी, दुकानदार, नौकर आदि के लिए प्रयुक्त होते हैं। 'बहन' शब्द बहन की आयु की कन्याएँ, सहेलियाँ आदि का बोध कराता है।

सामाजिक परिवेश के कारण एकार्थक होन पर भी हिन्दु 'परमात्मा' को 'ईश्वर', ईसाई 'God', मुसलमान 'अल्लाह' कहता है।

धार्मिक परिवेश भेद :

धार्मिक परंपराओं के कारण शब्दों के अर्थों में अंतर आ जाता है। प्राचीन परंपरा के अनुसार दो वेद जानने वालों को 'द्विवेदी' तीन वेद जाननेवाले को 'त्रिवेदी' या 'त्रिपाठी', चार वेद जानने वाले को 'चतुर्वेदी' कहते हैं। परंतु ये शब्द अब ब्राह्मणों की जाति -विशेष के वाचक रह गए है।

राजनीतिक परिवेश भेद :

राजनीतिक परिस्थितियों में अंतर हो जाने के कारण शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। उनमें मूल भावना नष्ट हो जाती है। व्यापक अर्थ में उन शब्दों का प्रयोग हो जाता है। जैसे -

पारिवारिक गृह कलह के लिए	महाभारत
दुराग्रह पूर्ण कार्य के लिए	सत्याग्रह
हठ युक्त आंदोलन के लिए	क्रांति
झगड़े में मरने वाले के लिए	शहीद
दुष्ट ह्रदय को भी	महाशय, विशाल ह्रदय
राष्ट्र को पीछे ले जाने वाले को भी	नेता

भौतिक परिवेश भेद :

भौतिक साधनों में परिवर्तन होने के कारण वस्तुओं के नाम में भी परिवर्तन हो जाता है। नई वस्तुओं के निर्माण या अविष्कार के साथ यह समस्या आ जाती है कि उनका नाम क्या रखा जाए। इसके लिए सरल उपाय यही अपनाया जाता है कि कोई पुराना शब्द जो उसके तुल्य वस्तु का बोधक हो, उसे उस अर्थ में प्रयोग में लाया जाए। पीने के लिए प्रयुक्तपात्र का प्राचीन नाम 'कमण्डल' (लोटा) आदि ज्ञात है, परंतु 'गिलास' जैसे बर्तन का नाम अज्ञात है। अँग्रेजी शब्द Glass काँच के लिए है। अँग्रेजी में 'शीशा' या 'दर्पण' को Glass या Lookin (लुकिन ग्लास) कहते हैं। पहले काँच का बना अत: उसे ग्लास (गिलास) कहा गया। परंतु अब अर्थ विस्तार होने से धातु, प्लास्टिक आदि के बने पात्र को भी ग्लास कहा जाता है। 'Pen' शब्द का इतिहास भी इसी प्रकार का है। पहले पक्षी के पंख को 'Pen' कहते थे। पहले कलम पक्षी के पंख से बनती थी। अत: उसे 'Pen' कहा गया। अब 'Pen फाउन्टन पेन, डॉट पेन आदि के लिए प्रयुक्त है।

शिष्टाचार एवं विनम्रता :

शिष्टाचार एवं विनम्रता मनुष्य की कुलीनता का सूचक है। इसमें अहंभाव का परित्याग है। अत एंव अपने इष्टदेव, पूज्य, राजा आदि का बहुत बढ़ा -चढ़ाकर वर्णन किया जाता है। और अपने को तुच्छ समझा जाता है। जैसे भक्त अपने को दीन, पतित, पापी आदि कहा जाता है तो परमात्मा को दीन-बंधु, पतित - पावन, पालनकर्ता, राजा को महाराजा, अन्नदाता, जहा पनाद, जगत्पालक आदि कहा जाता है।

अशोभन के लिए शोभन शब्द :

मनुष्य अशोभन से बचना चाहता है। अत: शोभन शब्द प्रयुक्त करता है।

अशुभ :

मृत्यु के लिए देहावसान, बैकुण्ठवास, पंचत्व, स्वर्गासिधारण, लाश के लिए शव, मिट्टी, वैधव्य के लिए चूड़ी टूटना, लुट जाना, माँग सफेद होना, सिंदूर पूछ जाना आदि।

अश्लील :

लज्जाजनक शब्दों का अप्रयोग। इसमें मल-मूत्र-त्याग, नम्रता, यौन-कार्य आदि आते हैं। जैसे- मलत्याग के लिए - शौच, टट्टी, पाखाना मैदान जाना

मूत्र त्याग के लिए - लघुशंका

स्तन के लिए - छाती

गर्भिणी के लिए - पाँव भारी होना

कटुता या भयंकरता :

भयंकर वस्तु, अप्रिय या उससे भय होने से जैसे -

साँप - लम्बा कीड़ा

चेचक - शीतला माता, महाराणी

हैजा - पेट चलना

अंध विश्वास :

अंधविश्वास के कारण पति, पत्नि, गुरु बड़ों का नाम नहीं लिया जाता। जैसे

पति के लिए - अमुक के पिता, सुनोजी

पत्नि के लिए - अमुक की माँ, ऐं मालकिन, अमुक की म्हातारी

गन्दे या हीन कार्य :

अच्छे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे -

भंगी - जमादार, मेहतर

चोर - तस्कर

नाई - राजा (पंजाबी)

मेहतर - राजा (बुलंद शहर)

नौकर - Servent न कह कर House Associate

चपरासी - सेवक

क्लर्क - बाबु

रसोइया - महाराज

जुगुप्सा :

इसका अर्थ है रक्षा करना। रक्षा योग्य वस्तु छिपाकर रखी जाती है इसी कारण जुगुप्सा का अर्थ छिपाने योग्य हो गया। धीरे-धीरे 'जुगुप्सा' शब्द का प्रयोग घृणा के अर्थ में होने लगा। घृणास्पद बातों का प्रयोग अशिष्ट समझा जाता है। यौन अंग, यौन भावना के लिए शिष्ट शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे -

मैथून के लिए - रति, कर्म, संभोग

नग्न के लिए - दिगंबर

सादृश्य :

सादृश्य के कारण भी शब्दों के अर्थों में अंतर आ जाता है। जैसे -

प्रक्षय - 'विनय' पर अब आश्रय

उत्क्रांति - 'मृत्यु' पर अब क्रांति

उत्क्रोश - 'चिल्लाना' पर अब आक्रोश

चेष्टा - 'प्रयत्न' मराठी में मजाक

उपन्यास - 'Novel' तेलुगु में भाषण

अज्ञान :

अज्ञानता के कारण बहुत से शब्दों का अशुद्ध प्रयोग होने लगता है, बाद में वे शब्द भाषा में चल पड़ते हैं। जैसे -

असुर - देव अब राक्षस

धन्यवाद - प्रशंसा अब शुक्रिया

फिजुल - बेकार अब वे फिजुल

प्रयोगाधिक्य :

कुछ शब्द अधिक प्रयोग के कारण अपना मूल महत्वपूर्ण अर्थ खो जाते हैं। जैसे -

श्रीमान - पहले आदर सूचक अब औपचारिक।

बाबु - पहले बड़प्पन सूचक अब साधारण व्यक्ति।

साहचर्य :

साहचर्य के कारण भी शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। जैसे -

सिन्धु - बड़ी नदी सिंध से सिंध प्रदेश।

सैन्धव - सिंधु देश के बना पर अब नमक घोडा।

पत्र - 'पता' पर अब लिखित पत्र।

पुनरावृत्ति :

कभी-कभी शब्दों का दुहरा प्रयोग चल पड़ता है। बिंध्य पर्वत के स्थान पर बिंध्याचल पर्वत मलय के लिए मलयगिरि, मलयाचाल। जैसे -

हिमालय - हिमालय पर्वत

सज्जन - सज्जन पुरुष

अन्य भाषा का प्रभाव :

सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कारण अन्य भाषाओं का प्रभाव दूसरी भाषाओं पर पड़ता है। शब्द का अन्य भाषा में अर्थ बदल जाता है। जैसे -

संस्कृत में - समारोह - चढ़ता अब उत्सव

समाचार - ख्याति - अब खबर

पंजाबी में - रोटी सड़ गई - रोटी जल गई

मरम्मत करना - ठीक करना - अब पीटना

व्यंग्य - प्रयोग :

इसे काव्यशास्त्र में विपरीत लक्षणा कहते हैं। किसी पर आक्षेप करने या व्यंग्य करने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जो सर्वथा उलटा अर्थ बताते हैं। जैसे -

मुर्ख को वृहस्पति,

झूठे को युधिष्ठिर,

कुलक्षणा को सती,

अनाड़ी को पंडित,

असुन्दर को कामदेव का अवतार

दीप को लक्ष्पीपति आदि।

गौण प्रयोग :

गुण साम्य के आधार पर प्रयोग जैसे - सुन्दर कल्पना, कटु अनुभव, मधुर लय, मीठी मुस्कान, कटु सत्य, नीरष भाषण आदि।

लाक्षणिक प्रयोग :

भावों और अनुभूतियों की सरल, सुंदर एवं कलात्मक अभिव्यक्तियों के लिए लक्षणा शब्द शक्ति का आश्रय लिया जाता है। इससे भाषा में रोचकता एवं मधुरता आ जाती है। इसके लिए अनेक प्रकार अपनाएँ जाते हैं।

एक शब्द के दो रूपों का प्रचलन :

कभी-कभी तत्सम शब्दों के साथ-साथ उसके तद्भव रूप का भी प्रचलन हो जाता है। कभी-कभी अर्थ भिन्नता आ जाती है। जैसे -

स्थान - देवी देवताओं का स्थान।

थान - पशु का थान, कपड़े का थान

स्तन - स्त्री से सम्बधित

गर्भिणी - स्त्री के लिए

धन - पशु से सम्बधित

किसी शब्द या वर्ग की प्रधानता :

किसी विशेषता या प्राधान्य से पशु या वर्ग का प्रतीक विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे -

लाल झण्डा - कम्युनिस्ट का प्रतीक

गांधी टोपी - कॉंग्रेस का प्रतीक

भगवा टोपी - भाजपा का प्रतीक

अधिक शब्दों के स्थान पर एक शब्द :

मोटर कार को - मोटर या कार

सायकिल रिक्शा को - रिक्शा

रेल्वे स्टेशन - स्टेशन

घोड़ा गाडी - गाड़ी

भावावेश :

भावावेश में कभी-कभी विचित्र अर्थ में शब्दों का प्रयोग करते है। जैसे - शैतान, साले, गधा, उल्लू के पट्ठे आदि

एक वस्तू का नाम पूरे वर्ग को देना :

सामान्य के लिए विशेष प्रयोग जैसे -

स्याही - काली स्याही। अब हर रंग को स्याही

पैसे - मुझे पैसे दीजिए। पैसे - धन

समास, उपसर्ग, लिंग - भेद :

समाजयुक्त और असमस्त शब्दों के अर्थो में अंतर होता है। जैसे -

कृष्ण सर्प : सर्प विशेष - काला साँप (कोई भी साँप)

राज पुरुष - राजकीय कर्मचारी

कविराज्य - वैद्य

संक्षिप्तता :

प्रयत्न लाघव मानव की प्रवृत्ति है। अत: वह थोड़े शब्दों में अधिक अर्थ प्रकट करना चाहता है। जैसे - रामचंद्र को रामा, कृष्णचंद्र को कृष्णा।

किसी राष्ट्र या जाति को अन्य राष्ट्र, जाति संप्रदाय के प्रति अनादर :

फिरंगी पहले पुर्तगाली लोगों का वाचक था, आज अँग्रेजो का वाचक बन गया। "काफिर" का मूल अर्थ था - वह व्यक्ति जो इस्लाम को नहीं मानता, आज हिन्दूओंके लिए असम्मानार्थ प्रयुक्त होने लगे है। इसी प्रकार फारसी में हिन्दू का अर्थ नीच, गुलाम हो गया है। इसी कारण आर्य - समाजी जूते का कुरान, शौचालय को पाकिस्तान कहते हैं।

गौण अर्थ की प्रमुखता :

साहचर्य आदि कारणों से गौण अर्थ का मुख्य अर्थ में प्रयोग होने लगता है। संस्कृत में देश के आधार पर देशज व्यक्ति। 'पंजाब बहादुर है' में पंजाब पंजाबी के लिए है। असीरिया देश के आधार पर असुर नाम चले। इसी प्रकार सुलेमान पर्वत पर होने से सुलेमानी नमक, कश्मीर में होने से केसर को काश्मीर, चीन से संबंध होने से चीनी मिट्टी नाम पड़ा है। तंबाकू सर्वप्रथम सूरत बंदरगाह पर उतारी गयी, अंत: सुरती नाम पड़ा।

२.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से छात्र अर्थ विज्ञान को विस्तार से जान सके हैं। इसमें अर्थ विज्ञान की अवधारणा, शब्द और अर्थ का संबंध, अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ एवं कारण आदि के माध्यम से अर्थ विज्ञान क्या है? अर्थ का ज्ञान कैसे होता है? अर्थ विज्ञान में शब्दार्थ के आन्तरिक पक्ष का विवेचन, विश्लेषण कैसे किया जाता है, इसे समझाने का प्रयास रहा है। साथ ही अर्थ और शब्द के संबंध में अर्थ शब्द की आत्मा है और शब्द शरीर है।

२.७ अतिलघुत्तरीय प्रश्न

१) अर्थ विज्ञान में किसका विवेचन-विश्लेषण किया जाता है?

२) आचार्य पाणिनि ने भाषा का सार क्या माना है?

३) 'शब्द द्वारा अर्थ की प्रतिति या अभिव्यक्ति होती है' यह कथन किसका है?

४) मुनि यास्क ने अर्थ परिवर्तन की कितनी दिशाएँ मानी है?

५) निम्नलिखित किस विद्वान ने अर्थ परिवर्तन की छह दिशाएँ मानी है?

६) 'जुगुप्सा' शब्द मूलत: किस धातु से बना है?

२.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१) अर्थ विज्ञान की अवधारणा पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।

२) अर्थ विस्तार को स्पष्ट कीजिए।

३) भौगोलिक वातावरण से अर्थ में परिवर्तन होता है? संक्षिप्त में बताएँ?

२.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) अर्थ विज्ञान में अर्थ परिवर्तन की दिशाओं पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

२) अर्थ विज्ञान से संबंधित अर्थ परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

२.१० संदर्भ ग्रंथ

१. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२. भाषा विज्ञान - भोलानाथ तिवारी

३. भाषा विज्ञान के अधुनातम आयाम - डॉ. अंबादास देशमुख

४. भाषा विज्ञान की रूपरेखा - द्वारका प्रसाद सक्सेना

५. सामान्य भाषा विज्ञान - डॉ. बाबूराव सक्सेना

६. भाषा विज्ञान - रमेश रावत

❖❖❖❖

३

लिपि विज्ञान

इकाई की रूपरेखा:

३.०. इकाई का उद्देश्य

३.१. प्रस्तावना

३.२. लिपि विज्ञान

३.२.१. लिपि : उत्पत्ति एवं विकास

३.२.२. लिपि के विविध रूप

३.३. देवनागरी लिपि

३.३.१. देवनागरी लिपि का उद्भव एवं विकास

३.३.२. देवनागरी लिपि के गुण-दोष

३.३.३. देवनागरी लिपि में सुधार

३.४. सारांश

३.५. दीर्घोत्तरी प्रश्न

३.६. लघु प्रश्न

३.७. संदर्भ ग्रंथ

३.०. इकाई का उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- लिपि विज्ञान क्या है, उसे जानेंगे।
- लिपि विज्ञान का उद्भव और विकास से परिचित होंगे।
- लिपि विज्ञान में भारतीय लिपियों की जानकारी प्राप्त होगी।

३.१. प्रस्तावना

भाषा के विकास के बाद ही लिपि का विकास हुआ। प्रारंभ में आज के आधुनिक युग में जो सुविधा उपलब्ध है, वह सुविधाएँ उन्हें प्राप्त नहीं थी। फिर भी जैसे-जैसे समय गुजरता गया और अपने भावों और विचारों को सुरक्षित रखने के लिए अथवा स्थिर बनाने की

आवश्यकता महसूस हुई, तो मानव कुछ-ना-कुछ अविष्कार करता रहा। इस अविष्कार से बहुत सारे क्षेत्रों में उसे सफलता भी मिली। लिपि ने उसके मुख से निकली हुई ध्वनियों को तथा विचारों की अभिव्यक्ति को स्थिरता प्रदान की और भावी संतति के लिए अपने मनोभावों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। अर्थात लिपि लेखन पद्धति की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा भाषा को स्थायित्व प्रदान किया जाता है तथा व्यक्त वाणी को सुदीर्घ काल तक सुरक्षित रखा जाता है।

३.२. लिपि विज्ञान

३.२.१. लिपि : उत्पत्ति एवं विकास -

लिखने की कला का आविष्कार मनुष्य समाज की सबसे श्रेष्ठतम खोजों में से एक है। कई सदियों तक मनुष्य के पास अपने अभिव्यक्त विचारों के संरक्षण के लिए कोई विशेष साधन नहीं था। लिपि की दृष्टि से नवीन युग का प्रारंभ हुआ।

मनुष्य अपने ज्ञान विज्ञान के संचय और संरक्षण में प्रवृत्त हुआ। लिपि के कारण ही सभ्यता और संस्कृति का धीरे-धीरे विकास तेज होने लगा। इस प्रकार मानव को सुसभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने में भाषा से भी कहीं अधिक लिपि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह स्पष्ट है कि लिपि का महत्व भाषा से भी अधिक है। इतिहास साक्षी है कि लिपि के अभाव के कारण अनेक जातियां अपनी भाषाओं के साथ विश्व के रंग मंच पर आई और विलीन हो गई।

३.२.२. लिपि के कई रूप हमारे सामने आए जैसे सबसे पहले -

१. प्रतीक लिपि:-

प्रारंभ में लिपि के अभाव में प्रतिकों द्वारा विचार अभिव्यक्ति की जाती थी। युद्ध स्थल में सफेद ध्वज संधि का प्रतीक था तिनके को तोड़ना अवज्ञा का था। तिनके को मुंह में पकड़ना अधीनता स्वीकारने का प्रतीक था। आज भी गार्ड द्वारा हरी और लाल झंडी रेलगाड़ी के चलने और रुकने का संकेत है। नगरों में सड़कों के चौराहों पर लाल पीली और हरी बत्ती क्रमशः रुकने तैयार होने और चलने की सूचक है।

२. चित्र लिपि:-

प्रतीक लिपि से चित्र लिपि का विकास हुआ है। डॉ. उदय नारायण तिवारी के अनुसार लिखने की कला का आद्य रूप वास्तव में चित्र लिपि ही है। इसमें किसी वस्तु का बोध कराने के लिए चित्र बना दिया जाता है। यहाँ यह उल्लेख है कि इन चित्रों द्वारा अर्थ बोध हो जाता था। परंतु ध्वनि बोध नहीं होता था चित्र और चित्र लिपि में भी अंतर था। चित्र में चित्रकार का उद्देश्य जहां किसी वस्तु का अंकन मात्र होता था। वहां चित्र लिपि में विचारों की अभिव्यक्ति और संरक्षण ही उद्देश्य होता था। वस्तुत मनुष्य द्वारा गुफा चित्रों के बाद क्रमश: उन्नति करते हुए चित्र लिपि का आविष्कार होता है। विश्व के प्राय: सभी देशों में चित्र लिपि के प्रयोग में प्रमाण पाए जाते हैं। इस चित्र लिपि का एक दोष तो यह था कि प्रत्येक वस्तु का पृथक संकेत अपेक्षित था। अतः अनंत चित्र बनाने पड़ते थे। इससे वहां बहुत स्थान लगता था। वहां समय भी अधिक लगता था। शीघ्रता से अपने भावों की अभिव्यक्ति संभव नहीं थी।

इसके अतिरिक्त इसमें स्थूल पदार्थ की अभिव्यक्त होती थी। सूक्ष्म मनोभाव नहीं। फिर समय और स्थान का बोध भी नहीं हो पाता था। इन दोषों के होने पर भी उसमें एक बहुत बड़ा गुण था उसकी सर्वजन बोधता हाथी के चित्र को देखकर कोई भी व्यक्ति किसी भी देश का वासी अथवा भाषा का भाषी हो अर्थ समझ जाता था। परंतु इस गुण की अपेक्षा दोषों की अधिकता ने मनुष्य को किसी अन्य निर्दोष लिपि की खोज की ओर प्रवृत किया।

३. भाव लिपि:-

चित्र लिपि का ही विकसित रूप भाव लिपि है। इसमें वस्तुओं का चित्र ना होकर मनुष्य के हृदय के भावों का रेखामाय अंकन होता था। उदाहरण के लिए सूर्य के वृत चित्र से केवल सूर्य ही अभिप्रेरित नहीं होता था। बल्कि उष्णता, प्रकाश, दिन तथा देवता आदि सूर्य से संबंधित सभी भावों की अभिव्यक्ति हो जाती थी। जहां चित्र लिपि में वस्तु के लिए पूरा चित्र अपेक्षित था। वहां भाव लिपि में केवल उसका अंश चित्रण भी पर्याप्त था। उदाहरण के लिए पशु का बोध कराने के लिए चित्र लिपि में पशु का संपूर्ण चित्र अंकित किया जाता था परंतु भाव लिपि में उसके सिर की रेखाओं के अंकन मात्र से ही उसकी अभिव्यक्ति हो जाती थी। विश्व के विभिन्न देशों की भाव लिपियों में पर्याप्त एकरूपता मिलती है। विभिन्न देशों की भाव लिपियों में अस्वीकृति के लिए पीठ फेरना, प्रेम के लिए आलिंगन करना, युद्ध के लिए शस्त्र लेकर सामने आना आदि समान संकेत ही मिलते हैं।

भावलिपि चित्र लिपि की अपेक्षा संक्षिप्त थी। उसमें वस्तु के साथ-साथ घटना भी अंकित की जा सकती थी। परंतु मानव बुद्धि इतने से ही संतुष्ट नहीं हुई। भाव लिपि का ही विकसित और उन्नत रूप ध्वनि मूलक लिपि है।

४. ध्वन्यात्मक लिपि -

चित्र लिपि तथा भाव लिपि में प्रयुक्त चित्रों अथवा प्रतिकों का उनके लिए उच्चरित ध्वनियों से कोई संबंध नहीं था। वस्तुत: चित्र अथवा प्रतीक भाषा विशेष केंद्र न होकर विभिन्न भाषाओं में सामान्य रूप से प्रयुक्त होते थे। लिपि के इतिहास में ध्वन्यात्मक लिपि का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इसमें प्रयुक्त चिन्ह वस्तु अथवा भाव के स्थान पर भाषा की विशेष ध्वनियों को प्रकट करते हैं। संक्षेप्त इसमें लिखित रूप उच्चरित भाषा का दूसरा रूप होता है इस ध्वन्यात्मक लिपि के दो भेद हैं - क) अक्षरात्मक लिपि, ख) वर्णनात्मक लिपि।

क) अक्षरात्मक लिपि - इसमें प्रयुक्त चिन्ह किसी अक्षर को युक्त करता है वर्ण को नहीं इस लिपि में सवार कॉन को व्यंजन के साथ जोड़ने की रीति के कारण लिखने के मूल उत्पादन अक्षर ही हो जाते हैं | नागरिक अरबी, फारसी, बांग्ला, गुजराती, उड़िया तथा तमिल, तेलुगू आदि लिपियां अक्षरात्मक हैं।

डॉ. उदय नारायण तिवारी जी के शब्दों में "वस्तुतः नागरी लिपि को अर्ध अक्षरात्मक लिपि कहना ही उचित है। क्योंकि इसमें ध्वनि का विश्लेषण हो जाता है। वह विश्लेषण उतनी सुंदरता से नहीं हो पाता इतना रोमन की वर्णनात्मक लिपि के द्वारा।"

ख) वर्णनात्मक लिपि - लिपि वैज्ञानिकों के अनुसार यदि चित्र लिपि विकास की प्रथम सीढ़ी है। तो वर्णनात्मक लिपि उनकी अंतिम सीढ़ी है। वर्णनात्मक लिपि में ध्वनि की प्रत्येक

इकाई के लिए अलग-अलग चिन्ह होते हैं और उनके आधार पर किसी भी भाषा का कोई भी शब्द सरलता से लिखा जाता है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह एक आदर्श लिपि है। इस लिपि के आविष्कार से शिक्षा के प्रचार और प्रसार में अत्यधिक सहायता मिली है। इसकी सरलता का एक परिणाम यह हुआ है कि मुद्रण के अनेक यंत्रों के बन जाने से साहित्य का उत्पादन और प्रशासन तीव्र गति से होने लगा है।

इस प्रकार प्रतीक लिपि से चित्र लिपि, चित्र लिपि से भाव लिपि और भाव लिपि से ध्वनि मूलक लिपि का विकास हुआ। ध्वनि मूलक लिपि में भी अक्षरात्मक ध्वनि मूलक लिपि प्रारंभिक है। और वर्णनात्मक ध्वनि मुलक परवर्ती विकसित रूप है।

संसार की लिपियां प्रमुख रूप से दो वर्गों में रखी जा सकती हैं -

1) जिन में अक्षर या वर्ण नहीं है – i. क्यूनीफॉर्म लिपि, (कीलाक्षर)

ii. हिरोग्लिफैक लिपि,

iii. क्रीट लिपि,

iv. सिंधुघाटी लिपि,

v. हिट्टाइट लिपि,

vi. चीनी लिपि,

vii. प्राचीन मध्य-अमेरिका एवं मेक्सिको की लिपियां।

2) जिनमें अक्षर अथवा वर्ण हैं - इस वर्ग के अंतर्गत निम्नलिखित प्रधान लिपियां हैं -

i. दक्षिणी सामी लिपि,

ii. हिब्रू,

iii. फोनेएशियन,

iv. खरोष्ठी,

v. आर्मेइक,

vi. अरबी,

vii. भारतीय,

viii. ग्रीक एवं लैटिन लिपि।

भारतीय भाषाओं की लिपि अक्षरात्मक ध्वनि लिपि है।

विश्व की प्रमुख लिपियां विश्व में कई प्रकार की लिपियां हमें प्राप्त होती हैं जिनमें से कुछ प्रचलन में भी नहीं है फिर भी विश्व की प्रमुख लिपियां इस प्रकार हैं। इन्हें प्राय: दो भागों में बांटा गया है:-

1) वर्णमाला रहित लिपियां - यह वे लिपियां हैं जिनमें न ही वर्ण होते हैं और ना ही अक्षर।

2) वर्णमाला युक्त लिपियां - जिनमें अक्षर या वर्ण होते हैं।

उपर्युक्त जिन लिपियों का वर्णन किया है वे सभी इसमें आ जाएंगी।

१) वर्णमाला रहित लिपियां:-

यहां वर्णमाला रहित कुछ प्रमुख लिपियों का उल्लेख किया जा रहा है -

i. क्यूनीफॉर्म लिपि - इसको तिरनी, फली या बाण मुख तथा कीलाअक्षर लिपि भी कहा जाता है। यह लिपि पत्थरों मिट्टी के टुकड़ों पर लिखी हुई मिलती है। इसका प्रयोग कब होता था? इस विषय में अभी कोई निश्चित मत नहीं स्थिर हो सका है। फिर भी यह माना जाता है कि इसका 4000 ईसा पूर्व प्रयोग होता होगा। यूरोपीय लिपि को इसका उत्पत्तिकर्ता भी माना जाता है। इसको लगभग 1700 ई के बाद क्यूनिफॉर्म नाम भी दिया गया। क्योंकि इसके अक्षर आकार में तिकोने थे। इस नामकरण पर भी मतभेद है। यह नाम थॉमस हाइड ने दिया था। तो कुछ विद्वान यह मानते हैं कि यह नाम ई. कैंफर द्वारा प्रदान किया गया। यह रेखा प्रधान लिपि है जिसमें रेखाएं प्राय कर्णवाली खडी तथा पड़ी रहती है। इसको मूलक लिपि भी कहा जाता है। बाद में असीरियन, फॉरस आदि में इस लिपि का अर्ध अक्षरात्मक रूप मुद्रण कर लिया। यह प्रायः ऊपर से नीचे और दाएं से बाएं लिखी जाती है |

ii. हीरोग्लाफिक लिपि - इसके भी कई नाम है गुठासर, चित्राक्षर, बीजाक्षर, पवित्राक्षर। विश्व की प्राचीन लिपियों में यह महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह नाम इसको यूनानियों ने प्रदान किया था। जिसका मूल अर्थ है। पवित्र खुदे अक्षर। उस काल में मंदिरों की भितियों पर लेख जो होते जाते थे उनमें इसी लिपि का प्रयोग होता था। इसकी प्राचीनता भी 4000 ईसवी पूर्व मानी गई है। पहले यह चित्र लिपि थी। फिर भावलिपि के रूप में आई। उसके बाद यह अक्षरात्मक बनी। यह भी माना जाता है कि इसी लिपि में अक्षरों का विकास सर्वप्रथम हुआ था। साथ ही इसमें ध्वनि हेतु भी कई चिन्ह विकसित हो गए थे। इसकी यह भी विशेषता थी कि एक चिन्ह का कई ध्वनियों के लिए भी प्रयोग होता था। यह दाएं से बाएं लिखी जाती थी। फिर भी यह दोनों ओर से लिखी जा सकती थी। यह छठी शताब्दी तक प्रचलित रही थी।

iii. क्रीट लिपि - इसे क्रीटी लिपि भी माना जाता है। इसके दो रूप मिलते हैं। चित्रात्मक और रेखात्मक। इसका प्रयोग क्रीट के अभिलेखों में पाया जाता है। यह भी कुछ अंशो में भावात्मक है कुछ अंशो में ध्वन्यात्मक भी है। इसका लेखन भी बाएं से दाएं ही था। पर कभी दोनों ओर से लिखा जाता था। यह भी हीरोग्लाफिक लिपि से ही विकसित हुई है। यह 1200 ईसवी पूर्व से पहले ही समाप्त हो गई थी।

iv. हिट्टाइट लिपि - इसका एक नाम हिट टाइट हीरो ग्लोरिफिक भी है। इसका प्राचीनतम प्रयोग 1500 ईसवी पूर्व तक प्राप्त होता है और 1600 ईसवी पूर्व के बाद इसका प्रयोग नहीं मिलता यह मूलतः चित्रात्मक लिपि थी। आगे चलकर कुछ अंशो में भावात्मक तथा कुछ अंशो में ध्वन्यात्मक हो गई थी। इसमें 419 चिन्ह मिलते हैं। यह भी कभी दाएं से और कभी बाएं से लिखी जाती थी। इसकी उत्पत्ति भी मिश्री हीरोग्लाफिक से मानी जाती है पर कुछ लोग इसकी उत्पत्ति क्रिट की चित्रात्मक लिपि से मानते हैं।

v. सिंधु घाटी लिपि - इसको भारतीय लिपि माना जाता है। सिंधु घाटी में इसका प्राचीन रूप मिलता है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त शिलाएं इसकी जानकारी देती हैं। इसमें

विभिन्न प्रकार की भाषा संबंधी चिह्न थे, परंतु यह आज तक पढ़ी नहीं जा सकी है। इसका काल भी 4000 ईसवी पूर्व से 2500 ईसवी पूर्व तक माना जाता है। यहां भी कुछ चित्रात्मक चिह्न हैं तथा कुछ अक्षरात्मक। यह भाव और ध्वनि लिपि का संगम मानी जाती है। इसमें कितने चिह्न थे, यह विषय भी विवादास्पद है। स्मिथ के अनुसार इसमें 306 चिह्न थे। और लैग्डन के अनुसार इसमें 228 चिह्न थे। हाटर के अनुसार इसमें 153 चिह्न ही थे।

यह भी माना जाता है कि चित्रात्मक कोण में मुद्रा त्रिकोण कुछ चतुष्कोण, खम्भा, गुणन चिन्ह, डमरू आदि के समान चिन्ह थे। अक्षर चिह्नों के कुछ ब्राह्मी में के क ख ग आदि के तुल्य तथा कुछ ब्राह्मी अंकों के तुल्य है।

vi. चीनी लिपि - डॉ. कपिल देव द्विवेदी ने इसकी विस्तृत चर्चा की है। चीनी किवदंती के अनुसार फुन्हे नामक किसी व्यक्ति ने 3200 ईसवी पूर्व में इस लिपि का आविष्कार किया था । चीनी भाषा का विश्वकोश फ़ायुआन यूलित 668 ई. के अनुसार त्क्षकी को इस लिपि का आविष्कारक माना जाता है। चीनी लिपि के विषय में भी अलग-अलग मत मिलते हैं -

a) पीरु की ग्रंथ लिपि की तरह किसी लिपि से यह निकली है।

b) सुमेरी लोगों की रूपी यूनिफॉर्म से इसका विकास हुआ है।

c) चीन में हाथ की मुद्रा से भाव प्रदर्शन का जो प्रचलन था उसके अनुकरण पर यह लिपि उपज है।

d) इसका जन्म सजावट यहां स्वास्तिक कॉन से हुआ है।

e) मिसर की हीरोग्लाइफि से उत्पन्न हुई है।

f) मेसोपोटामिया ईरान या सिंधु घाटी की चित्र लिपि की प्रेरणा से चीनियों ने उसे अपनाया।

भोलानाथ जी के अनुसार अंतिम मत अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। क्योंकि यह सभी देश चीन के संपर्क में थे। साथ ही यहां चित्र लिपि का विकास चीन से पहले हो गया था। यह भी एक कारण है कि चीनी लिपि भी अक्षर या वर्णविहीन अन्य लिपियों की भांति अक्षर और वर्णविहीन है। उसमें विभिन्न शब्दों हेतु अलग-अलग चिन्ह है। यह भी माना जाता है कि अपने मूल रूप में अधिकतर चिन्ह चित्र रहे होंगे। पर धीरे-धीरे बदलते बदलते अधिकांश चित्र रूढ़ि रूप में मात्र चिन्ह ही रह गए। यहां प्रत्येक अक्षर हेतु अलग-अलग चिन्ह है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इन चिन्हों को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

1) चित्रात्मक चिन्ह - यह चित्र चीनी लिपि के आरंभिक काल के हैं। ईश्वर, कुआं, मछली, सूर्य, चाँद तथा पेड़ के चित्र चित्रात्मक लिपि के उदाहरण है।

2) संयुक्त चित्रात्मक चिन्ह - इन्हें अधिक विकसित चिन्ह भी माना जा सकता है। अधिक चित्रात्मक चिन्हों के सहयोग से कुछ वस्तुओं हेतु दो चिन्हों के प्रयोग से चिन्ह बनाए गए। तथा दो वृक्षों का चिन्ह पास पास बनाकर जंगल का चिन्ह बनाया गया। एक रेखा खींचकर उसके ऊपर सूर्य बनकर प्रातः काल का चिन्ह बनाया गया।

3) भाव चिन्ह - जब स्कूल वस्तुओं जीवन हेतु चिन्ह बन गए तब सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति का प्रश्न उठा भावों की अभिव्यक्ति मात्रा कॉन से करवाना डिटेल समस्या थी पर चीनी बड़े चतुर निकली और सूक्ष्म भाव को भी चित्रों के माध्यम से व्यक्त करने में सफल हो गए| जैसे सूर्य चांद के चिन्ह = चमक या प्रकाश।

4) ध्वन्यार्थ संयुक्त चिन्ह - चीनी भाषा बहू अर्थ वाचक होती है। जिसमें एक ही शब्द के कई अर्थ रहते हैं। अर्थ भेद स्पष्ट करने का कार्य उच्चारण से लिया जाता है। उच्चारण की स्थिति और सुर-ध्वनि के आधार पर अर्थ को स्पष्ट कर देती है। पर जब कोई लिखित चीज पढ़ी जाती है। तो यह अनेकार्थकता बाधक बन जाती है। इस स्थिति से निपटने हेतु चीनी भाषा में ध्वनि के संकेत के लिए लिखने में चिन्हों का दोहरा प्रयोग करना शुरू कर दिया गया था। जिन्हें दुनिया ध्वन्यार्थ चिन्ह कहा जाने लगा।

2) वर्णमाला युक्त लिपियाँ -

i. सामी लिपि - यह 22 वर्णों वाली लिपि थी। जो दो शाखाओं में विभक्त थी –

1) उत्तरी सामी लिपि और 2) दक्षिणी सामी लिपि थी।

उत्तरी स्वामी लिपि के दो भेद हैं- 1. आर्मोडीक दूसरी २. फोनीशियन। जिनमें से आर्मोडीक लिपि के आठवीं सदी ई.पू. के अभिलेख सीरिया के सिंदिली नामक स्थान में मिलते हैं। जो उत्तरी स्वामी की मुख्य लिपि मानी जाती थी। हिब्रू का विकास भी इसी के आधार पर हुआ था। जिसमें प्राचीन बाइबल और कुछ अभिलेख भी पाए जाते हैं जिनका काल 1000 ईसवी पूर्व जाता है फाइनेंशियल में सर्वाधिक प्राचीन अभिलेख नवी शताब्दी में ईसवी पूर्व उपलब्ध है जो तत्कालीन फर्निशिंग व्यापारियों की लिपि थी।

ii. ग्रीक लिपि - यह यूनानी लिपि भी मानी जाती है। वर्तमान यूरोपीय लिपियां ग्रीक से ही विकसित मानी जाती है। ग्रीक की उत्पत्ति सामी से विकसित फोनशियन (फोनशि) भाषा से हुई है, पर कुछ विद्वान इसकी उत्पत्ति आर्मोडीक की पुत्री एशियनिक द्वारा मानते हैं। यह भी फोनीशियन व्यापारियों की भाषा मानी जाती है। ये भी सामी लिपि का ही प्रयोग करते थे। यह लिपि थोड़ी आवश्यक परिवर्तन के बाद ग्रीको द्वारा अपना ली गई डॉ. डिजिर के अनुसार ग्रीक में सामी की तीन विशेषताएं हैं:

१) ग्रीक अक्षरों के स्वरूप से साम्य।

२) सामी के तुल्य क्रम।

३) सामी के तुल्य अधिकांश अक्षरों के नाम।

यह लिपि 24 अक्षर वाली है। जो बाएं से दाएं लिखी जाती है। इसका प्राचीन रूप 7 सदी ई.पू. तक प्राप्त होता है। उसके चिन्ह 'थेरा' द्वीप से मिले है। ये दोनों ओर से लिखी हुई है। दाएं से बाएं, बाएं से दाएं साथ ही कुछ अभिलेख उत्तरी मिस्र की अबनिंवले से भी सातवीं सदी में प्राप्त हुए हैं। साथ ही कोरिन्थे और एथेंस में भी छठी ई.पू. में भी मिले हैं।

iii. अरबी लिपि - यह लिपि विश्व की बहु प्रचलित लिपि है। इसकी उत्पत्ति विवादास्पद है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है, “प्राचीन काल में एक पुरानी सामी लिपि थी। जिसकी आगे चलकर दो शाखाएं हो गई थी। एक उत्तरी सामी लिपि और दूसरी दक्षिणी सामी लिपि। बाद में उत्तरी सामी से आर्मेडीक तथा फोनेशियन लिपियां विकसित हुई। उनमें आर्मेडीक ने विश्व की बहुत सी लिपियों को जन्म दिया। जिससे हिब्रु, पहलवी, नेवार्तन आदि प्रधान है। नेवार्तन से विनोटिक और सिनोटी से पुरानी अरबी उत्पन्न हो उठी। इसका जन्म कब कहां हुआ यह निश्चित नहीं है। इसके कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। यह बात अलग है इसका प्राचीनतम अभिलेख 512 ई. का है आता है। यह माना जा सकता है कि इसके पूर्व अरबी का जन्म हो चुका था। यह भी माना जाता है कि इसका विकास मक्का मदीना बसरा फूफा रमस्कन आदि नगरों में हुआ। परंतु इसकी शैलियां और विशेषताएं अलग-अलग थी। उन में दो महत्वपूर्ण थी-

1) कुफी - जो मेसोपोटामिया के गुफा नगर में विकसित हुई थी।

2) नस्खी - यह मक्का मदीना में विकसित हुई थी।

कूफी का विकास सातवीं सदी के अंतिम चरण में माना जाता है। यह लिपि कलात्मक थी। और इसका प्रयोग अभिलेखों में कई रूपों में होता था। नस्खी बाद में विकसित होने वाली लिपि है। यह सामान्य कार्यों तथा स्वर लेखन आदि में प्रयुक्त होती थी। यह लिपि दाएं से बाएं लिखी जाती है। इसमें 28 अक्षर हैं। यह लिपि विश्व के बड़े इलाके में अपना ली गई। यूरोप एशिया अफ्रीका आदि के कई देशों में यह अपना ली गई। जिनमें तुर्की (भले ही अब वहां रोमन लिपि अपना ली गई है) फारस, अफगानिस्तान तथा हिंदुस्तान आदि हैं। साथ ही इसके चिन्ह अक्षरों में भी कुछ परिवर्तन हो गया है।

iv. लैटिन लिपि - यह रोमन लिपि भी मानी जाती है। यह लिपि आज संसार में अपना वर्चस्व बना चुकी है। यह लिपि टाइप कंप्यूटर पर खूब दौड़ती है। इसमें व्यंजन और स्वर की मात्राएं अलग-अलग लिखे जाने से प्रतीक ध्वनि को अलग-अलग दर्शाया जा सकता है। इसकी उपयोगिता और लोकप्रियता बहुत अधिक है।

३.३. देवनागरी लिपि

३.३.१. देवनागरी लिपि: उद्भव और विकास:

देवनागरी लिपि का जन्म ब्राह्मी की उतरी शैली के एक प्राचीन रूप नागरी लिपि से हुआ है। ईसवी पूर्व पांचवी सती से 350 ई तक ब्राह्मी राष्ट्रीय लिपी थी। 350 ई के उपरांत इसकी दो शैलियां उत्तरी और दक्षिणाई दो हो गई । इन्हीं दोनों शैलियों से ही भारत की विभिन्न प्राचीन लिपियों का विकास हुआ है।

उत्तरी शैली से विकसित पांच प्राचीन लिपियों गुप्त लिपि कौटिल्य की प्राचीन नागरी लिपि शारदा लिपि तथा बांग्ला लिपि है। आधुनिक काल में विकसित टकारी, सिरमोरी, डोगरी, जौनसारी कुल्लूई, मुल्तानी तथा गुरुमुखी आदि का संबंध भी ब्राह्मी की उत्तर शैली से हैं।

देवनागरी लिपि -

राष्ट्रभाषा हिंदी की लिपि देवनागरी है। यह हिंदी की पूर्ववर्ती भाषा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, तथा लोक भाषाओं की लिपि रही है। इसके देवनागरी नामकरण के संबंध में निम्नलिखित अनुमान है -

1) नागर अपभ्रंश से विकसित होने के कारण उसका नाम नागर पड़ा है।

2) नागर ब्राह्मणों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इसका नाम देवनागरी है।

3) नगर के लोगों अर्थात नागरों के प्रयोग की लिपि होने के कारण इसका नाम नागरी है।

4) शाम शास्त्री के अनुसार प्राचीन काल में देवों की मूर्तियों के निर्माण के प्रचलन से पूर्व संकेतों से उनकी उपासना की जाती थी। यह संकेत देवनगर कहलाते थे। बाद में देवनगर के मध्य लिखी जाने वाली लिपि का नाम देवनागरी पड़ गया।

5) दक्षिण भारत में इसका नाम नंदीनगरी होने के कारण इसका संबंध कदाचित किसी नंदीनगर नाम की राजधानी से है।

6) डॉ. उदय नारायण तिवारी के अनुसार देव भाषा संस्कृत के लिए प्रयुक्त होने के कारण इसका नाम देवनागरी पड़ गया।

यद्यपि इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता । तथापि डॉ. उदय नारायण तिवारी का मत अवश्य विचारणीय है।

दसवीं शती के आसपास वर्तमान नागरी का विकास प्राचीन नागरी से हुआ। नागरी के विकास के संबंध में गौरी शंकर हीराचंद ओझा जी का 'प्राचीन लिपि माला' में कथन है- दसवीं शती के उत्तर भारत की नागरी लिपि में कुटिल लिपि की भांति अ आ घ प म य स के सिर दो अंशों में मिलते हैं। परंतु 11वीं शताब्दी में दोनों अंश मिलकर एक सर की लकीर बन जाती है । और प्रत्येक अक्षर का सर उतना लंबा रहता है जितनी की अक्षर की चौड़ाई होती है। 11वीं शताब्दी की नागरी लिपि वर्तमान नागरी से मिलती-जुलती है और 12वीं शताब्दी से वर्तमान नागरी बन गई है। 12वीं शताब्दी से लगातार अब तक नागरी लिपि अधिकतर इसी रूप में चली आ रही है।

३.३.२. देवनागरी लिपि गुण और दोष:

देवनागरी लिपि के गुण:

(1) ध्वनियों की पूर्णता तथा वैज्ञानिकता - देवनागरी लिपि की वर्णमाला का विभाजन ह्रस्व, दीर्घ स्वरों और व्यंजनों में हुआ है। व्यंजनों का विभाजन भी स्थान तथा प्रयत्नों के अनुकूल व्यवस्थित है। उच्चारण स्थान के अनुसार व्यंजन वर्णों की अवस्थिति है। जहां रोमन वर्णों का क्रम ए, बी, सी फारसी वर्णों का क्रम अलिफ बे पे अत्यंत विचित्र तथा अनियमित है। वहां देवनागरी के वर्णों का क्रम अत्यंत वैज्ञानिक है। व्यंजनों का विन्यास उच्चारण विधि के अनुसार स्पर्श उष्मादि में विभक्त है। स्पर्श के अंतर्गत वर्णों का विभाजन उच्चारण स्थल के अनुसार कंठ्य से ओष्ठय तक है। एक वर्ग में भी वर्णों का विन्यास क-अघोष अल्पप्राण, ख-

अघोष महाप्राण, ग-सघोष अल्पप्राण, घ-सघोष महाप्राण। यह विन्यास मनमाना न होकर वैज्ञानिक है। वर्णों की ऐसी वैज्ञानिक अवस्था देवनागरी लिपि की एक विशेषता हैं ।

देवनागरी लिपि समस्याएं दोष एवं सुधार -

देवनागरी लिपि में जहां बहुत से गुण दिखाई देते हैं। वहीं कुछ साधारण कमियां भी हैं। जो निम्नलिखित हैं -

1) कुछ अक्षर अथवा लिपि चिन्ह आज के उच्चारण की दृष्टि से व्यर्थ हैं। उदाहरण के लिए 'ऋ' 'ण' तथा 'ष' का उच्चारण क्रमशः 'री' 'न' 'श' आदि होता है।

2) 'ख' में 'र' 'व' के भ्रम की संभावना रहती।

3) 'व' का उच्चारण दो स्थानों में होता है। क) ओष्ठ्य से- ज्वर, ख) दांत तथा ओष्ठ से- वीर। यहां भी लोगों को तकलीफ होती है।

4) संयुक्त व्यंजनों के रूपों में बड़ी विलक्षणता है। जैसे प्रेम, ट्रेन, क्रम, ग्रंथ आदि।

5) रेफ् (र्) के चार रूप हैं। परम, धर्म, क्रम तथा ट्रेन ।

6) कुछ लोग यह मानते हैं कि 'इ' की मात्रा अपने स्थान पर नहीं लग पाती। जैसे अस्तित्व में 'त' के साथ 'इ' आनी चाहिए लेकिन बहुत दूर रहती है।

7) कुछ लोग यह मानते हैं 'क्ष' 'त्र' 'ज्ञ' ये तीनों के लिए वास्तव में संयुक्त व्यंजन होने के कारण उच्चारण में दोष है।

8) ए-ऐ, ओ-औ के मध्य की ध्वनियों के सूचक वर्णों का अभाव है।

9) उ-ऊ, ए-ऐ, ओ-औ की मात्राएं नीचे ऊपर आगे पीछे लगते हैं। यथार्थत: इन्हें व्यंजन के आगे लगाना चाहिए।

10) कुछ अक्षरों के दो दो रूप प्रचलित हैं। इनमें एक ही रूप को स्वीकार किया जाना चाहिए।

३.३.३. देवनागरी लिपि में सुधार:

समय-समय पर देवनागरी लिपि में परिवर्तन होते रहते हैं। उदाहरण के लिए शिरो रेखा के प्रयोग के त्याग की प्रवृत्ति। विराम चिन्हों का अधिक प्रयोग। अनुनासिकता के स्थान पर अनुस्वार के प्रयोग की प्रवृत्ति तथा आदि ज, फ, ग नई ध्वनियों की स्वीकृति इसी परिवर्तन के ही संकेत हैं। आधुनिक काल में देवनागरी लिपि में उपयुक्त त्रुटियों को हटाकर उसे पूर्ण वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न भी हो रहा है। उनमें सबसे पहले नाम गुजराती नेता काका कालेकर का है। इन्होंने मुद्रण यंत्र की सुविधा के लिए अ के साथ जो दूसरी मात्राएं लगाने का सुझाव दिया। और इस प्रकार अ आ इ ई को समाप्त कर देने का सुझाव रखा। गांधी जी ने काका जी की योजना का अभिनंदन किया तथा इसी का प्रयोग अपने जीवन काल में किया।

सन 1907 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने लिपि सुधार के लिए एक समिति का गठन किया। आचार्य नरेंद्र देव की अध्यक्षता में इस विषय में एक समिति का गठन उत्तर प्रदेश सरकार ने भी किया। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात संविधान लोक सभा (केंद्रीय सरकार) ने हिंदी शीघ्र लिपि तथा टंकण में एकरूपता लाने के लिए काका कालेकर की अध्यक्षता में एक समिति बनाई। मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री रविशंकर शुक्ल ने देश भर के लिपि विशेषज्ञ तथा साहित्य विद्वानों की एक बैठक बुलाने का सुझाव दिया। 28-29 नवंबर 1953 को यह बैठक हुई। इसमें 28 सुझाव दिए गए। उनमें से कुछ मुख्य प्रकार हैं-

1) व्यंजनों और वर्णों का एक ही रूप चलेगा।

2) ह्रस्व 'इ' की मात्रा भी बाएं की अपेक्षा दाएं लगाई जाए। और वह शिरोरेखा पार करते हुए समाप्त हो। जैसे – कीरण ।

3) 'ख' में 'र' 'व' के भ्रम की निवृत्ति के लिए पूरी शिरो रेखा लगानी चाहिए।

4) अक्षरों पर शिरो रेखा अनिवार्य रूप से लगाई जाए।

5) अंको में भी हो सके तो एकरूपता का प्रयोग किया जाना चाहिए और अंग्रेजी के अंकों का प्रयोग करें।

6) पूर्ण विरामों के लिए (।) का प्रयोग करना चाहिए। बाकी सभी के लिए अंग्रेजी के विरामों का प्रयोग होना चाहिए।

काका कालेकर की समिति के सुझावों का स्वागत नहीं हुआ। इस कारण आज भी लिपि का वही रूप प्रचलित है। वस्तुत सौंदर्य सरलता तथा वैज्ञानिकता का ध्यान रखते हुए इस प्रश्न पर अत्यंत गंभीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

३.४. सारांश

प्रस्तुत इकाई में लिपि विज्ञान को स्पष्ट किया गया है। लिपि विज्ञान के उद्भव और विकास के साथ लिपि के रूप पर प्रकाश डाला गया है। देवनागरी लिपि का उद्भव और विकास की चर्चा की गयी है।

३.५. दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) लिपि विज्ञान को विस्तार से स्पष्ट कीजिए।

२) लिपि विज्ञान में भारतीयों लिपियों पर प्रकाश डालिए।

३) भारतीय लिपियों के उद्भव और विकास को रेखांकित कीजिए।

३.६. लघु प्रश्न

१) लिपि विज्ञान को संक्षित्प में समझाइए।

२) लिपि के रूपों लिखिए।

३) ध्वन्यात्मक लिपि के भेदों को स्पष्ट कीजिए।

३.७. संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) आधुनिक भाषा विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा

३) भाषा विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

❖❖❖❖

४

हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इकाई की रूपरेखा :

४.० इकाई का उद्देश्य

४.१ प्रस्तावना

४.२ प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ - वैदिक तथा लौकिक संस्कृत और उसकी विशेषताएँ

४.३ मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ - पालि, प्राकृत, शौरसेनी, अर्धमागधी, अपभ्रंश और उनकी विशेषताएँ

४.४ आधुनिक भारतीय भाषाओं का सामान्य परिचय - मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, तेलगु, कन्नड, तमिल, मलयालम

४.५ सारांश

४.६ लघुत्तरीय प्रश्न

४.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

४.८ संदर्भ ग्रंथ

४.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से आपका परिचय होगा।

i) प्राचीन भारतीय भाषाओं का रूप और व्यवहार स्पष्ट होगा।

ii) वैदिक और लौकिक संस्कृत का अंतर स्पष्ट होगा।

iii) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

iv) आधुनिक भारतीय भाषाओं की जानकारी प्राप्त होगी।

v) आधुनिक भारतीय भाषाओं के क्षेत्र, उपयोग से परिचय होगा।

४.१ प्रस्तावना

'भाषा' शब्द संस्कृत 'भाष' धातु से निष्पन्न है - जिसका अर्थ है 'भाष् व्यक्तायां वाचि' अर्थात् व्यक्त वाणी। 'भाष्यते व्यक्तवाग् रुपेण अभिव्यज्यते इति भाषा' अर्थात भाषा उसे कहते है जो व्यक्त वाणी के रूप में अभिव्यक्ति की जाती है।

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है, मानव की वाणी भाषा है।

प्रतिकों की वह व्यवस्था जिसे मुख द्वारा उच्चरित किया जाता है और कानों द्वारा सुना जाता है वह भाषा कहलाती है। इस प्रकार की अनेकों परिभाषाओं से हमारा परिचय पहले भी हो चुका है।

वर्तमान समय में बोली जाने वाली भाषाएँ अनेकों वर्षों की लगातार होने वाली परिवर्तनों, विभिन्न भाषाओं का आपस में समावेषण और उन्मूलन से बनी है। अर्थात आज की बोली जाने वाली भाषाओं का एक लंबा इतिहास रहा है जो बहुत ही दिलचस्प है। भाषाओं का इतिहास १०,००० वर्ष से भी पुराना है। जैसे जैसे मानव जीवन का विकासक्रम जंगल, गुफाओं से कृषि और सामाजिक संस्थाओं के निर्माण की ओर अग्रसर होता गया, वैसे-वैसे भाषाओं का विकास और परिवर्तन भी होता गया।

४.२ प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ

भारत सिर्फ एक देश नहीं बल्कि एक ऐसा विशाल भू-भाग और महाद्वीप के समान है जहाँ का भाषीय इतिहास काफी समृद्ध और संपन्न रहा है। भारत भाषा और बोलियों की दृष्टि से विश्व का सर्वाधिक समृद्ध कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। विश्व का कोई भी देश ऐसा नहीं जो भाषाओं के मामले में इतना समृद्ध रहा है।

कुछ विद्वानों ने गणना करके विश्व की सभी भाषाओं की संख्या २७९६ बताई है। किन्तु कुछ विद्वान अनुमानत: इसकी संख्या ३००० बताते हैं।

भारत में (२००१ की जनगणना के अनुसार) १२२ मुख्य भाषाएँ और १५९९ बोलियों की संगणना की गई है, जो कि एक सुखद आश्चर्य है।

डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार भारत में १७९ समृद्ध और विकसित भाषाएँ है तथा ५४४ बोलियाँ प्रचलित हैं। इन सभी बोलियों और भाषाओं को सुविधा की दृष्टि से मुख्य दो वर्गों में विभाजित करके देखा जा सकता है।

१. आर्य भाषाएँ

२. आर्येतर भाषाएँ

क्र.	**भौगोलिक क्षेत्र**	**भाषा - परिवार**
(क)	युरेशिया (युरोप - एशिया)	१) भारोपीय (भारत - युरोपीय) २) द्राविड़ परिवार ३) काकेशी परिवार ४) बुरूशस्की परिवार ५) उराल अल्ताई परिवार ६) चीनी परिवार ७) जापानी - कोरियाई परिवार

		८) अत्युत्तरी परिवार ९) बास्क परिवार १०) सामी हामी परिवार
(ख)	आफ्रिका भूखण्ड	१) सुदानी परिवार २) बान्तू परिवार ३) होंततोत - बुशमैनी परिवार
(ग)	प्रशान्त महासागीरी भूखण्ड	१) मलय - पोलिनेशियाई परिवार २) पापुई परिवार ३) ऑस्ट्रेलियन परिवार ४) दक्षिण पूर्व एशियाई परिवार
(घ)	अमेरिका भूखण्ड	१) अमेरिकी परिवार

१. आर्य भाषाएँ :

आर्य भाषाएँ भारोपीय परिवार की भाषाएँ हैं। आर्य भाषाओं के अध्ययन हेतू इसके तीन भाग किए जा सकते हैं।

१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ,

२) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ,

३) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

भारत में प्राचीन - आर्य - भाषा समूह को काल क्रम की दृष्टि से निम्न वर्गों में बाँटा गया है।

अ) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ - २००० ई. पू. से - ५०० ई. पू. तक|

१) वैदिक संस्कृत - २००० ई. पू. - ८०० ई. पू. से तक

२) लौकिक संस्कृत - ८०० ई. पू. - ५०० ई. पू. से तक

ब) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ - ५०० ई. पू. - १००० ईसा तक|

१) प्रथम प्राकृत (पालि, अभिलेखी) - ५०० ईसा. पूर्व से १ ई. सन्

२) द्वितीय प्राकृत (प्राकृत) - १ ई. सन् से ५०० ईस्वी तक

३) तृतीय प्राकृत (अपभ्रंश) - ईस्वी ५०० से ईस्वी १०००

स) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ - ई. सन् १००० से अब तक

सिन्धी	लहँदा	पंजाबी	राजस्थानी
गुजराती	पश्चिमी हिन्दी	उडिया	बंगला
मराठी	पूर्वी हिन्दी	असमिया	कच्छी
भोजपुरी	पहाड़ी	जयपुरी	इत्यादि।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ -

१) वैदिक संस्कृत - २००० ई.पू - ८०० ई.पू.

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का प्राचीनतम नमूना वैदिक - साहित्य में दिखाई देता है। वैदिक सभ्यता का सृजन वैदिक संस्कृत में हुआ है। वैदिक संस्कृत को वैदिकी, वैदिक, छन्दस, छान्दस आदि भी कहा जाता है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का स्वरूप ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। यद्पति ऋग्वेद का समय अनिश्चित है; तथापि १५०० ई.पू. के आस-पास उसकी रचना हो गई होगी।

'ऋक' का शाब्दिक अर्थ है - स्तुति करना। वैदिक ऋषियों द्वारा देवताओं की प्रशंसा में रचित ऋचाओं का संग्रह 'ऋग्वेद' कहलाया। ऋग्वेद में १० मण्डल, १०२८ सूक्त तथा १०५८० ऋचाऐं हैं। इसके सूक्त प्रायः यज्ञों के अवसरों पर पढ़ने के लिए देवताओं की स्तुतियों से सम्बन्ध रखने वाले गीतात्मक काव्य हैं।

वैदिक साहित्य को तीन भाग में बाँटा गया है :

१) संहिता

२) ब्राह्मण एवं

३) उपनिषद्

१) सर्वप्रथम 'संहिता' की रचना हुई जिसे 'ऋग्वेद संहिता' भी कहा जाता है। संहिता - विभाग में 'ऋक् संहिता' 'यजुः संहिता' 'साम संहिता' एवं 'अथर्व संहिता' आते हैं। महत्त्व की दृष्टि से प्रधान 'ऋक संहिता' है। 'यजुः संहिता' में यज्ञों के कर्मकाण्ड में प्रयुक्त मन्त्र, पद्म एवं गद्य दोनों रूपों में संग्रहीत हैं। 'यजुः संहिता' कृष्ण एवं शुक्ल इन दो रूपों में सुरक्षित है।

'कृष्ण यजुर्वेद' संहिता में मंत्र भाग एवं गद्यात्मक व्याख्यात्मक भाग साथ-साथ संकलित किए गए हैं। परन्तु शुक्ल यजुर्वेद संहिता में केवल मन्त्र भाग संग्रहीत हैं।

'सामवेद' में सोम मार्गों में वीणा के साथ गाए जानेवाले सूक्तों को गेय पदों के रूप में सजाया गया है। 'सामवेद' में सोम केवल ७५ मन्त्र ही मौलिक हैं। शेष ऋग्वेद से लिए गए हैं। 'अथर्ववेद संहिता' जन साधारण में प्रचलित मन्त्र-तन्त्र; टोने-टोटके का संकलन है।

प्राचीन आर्यों की अपनी बोलचाल की भाषा भी रही होगी किन्तु सूक्तों और ऋचाओं की भाषा साहित्यिक है। तत्कालीन बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में अंतर अवश्य रहा होगा, परंतु उस समय के आर्यो के बोलचाल की भाषा के नमूने नहीं मिलते। सँभावना की जाती है कि उस समय की बोलचाल की भाषा की कुछ बानगी ऋग्वेद की साहित्यिक भाषा में आ गई हो।

२) ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट या अन्तिम भाग उपनिषदों के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनमें वैदिक मनीषियों के आध्यात्मिक एवं पारमार्थिक चिन्तन के दर्शन होते हैं।

३) उपनिषदों की संख्या १०८ बताई गई हैं किन्तु १२ उपनिषद ही मुख्य हैं :

१) ईश

२) केन

३) कठ

४) प्रश्न

५) वृहदारण्यक

६) ऐतरेय

७) छा-दोग्य

८) तैतरीय

९) मुण्डक

१०) माण्डूक्य

११) कौषीतकी

१२) श्वेताश्वेतर उपनिषद

ऋषियों द्वारा निर्मित सूक्त दीर्घकाल तक श्रुति-परम्परा में ऋषि - परिवारों में सुरक्षित रखे जाते रहे। परन्तु शनैः - शनैः बोलचाल की भाषा से सूक्तों की भाषा (साहित्यिक भाषा) की भिन्नता बढ़ती गई। सूक्तों के प्राचीन रूप को सुरक्षित रखने के लिए संहिता के प्रत्येक पद को सन्धि रहित अवस्था में अलग-अलग कर 'पद-पाठ' बनाया गया तथा पद पाठ से संहिता पाठ बनाने के नियम निर्दिष्ट किए गए और इस प्रकार वेद की विभिन्न शाखाओं के 'प्रतिशाखाओं' की रचना हुई। वेद की ११३० शाखाएँ मानी गई है। किन्तु वर्तमान में छह प्रतिशाख्य ग्रन्थ ही उपलब्ध है।

१) शौनक कृत ऋक-प्रतिशाखा

२) कात्यायन कृत शुक्ल - यजुः प्रतिशाख्य

३) तैतिरीय संहिता का तैतरीय प्रतिशाख्य

४) मैत्रायणी - संहिता का मैत्रायणी - प्रतिशाख्य (कृष्ण यजुर्वेद के प्रतिशाख्य)

५) सामवेद का पुष्प-सूत्र

६) अथर्ववेद का शौनक कृतं अथर्व प्रतिशाख्य

इन प्रतिशाख्यों में अपनी-अपनी शाखा से सम्बंधित वर्ण, विचार, उच्चारण, पद-पाठ आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। ये ग्रन्थ वैदिक काल के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक ध्वनि विज्ञान के ग्रन्थ हैं।

वैदिक संस्कृत ध्वनियाँ :

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. उदय नारायण तिवारी, डॉ. कपिल देव द्विवेदी जैसे विद्वानों ने वैदिक ध्वनियों की संख्या ५२ मानी है, जिनमें १३ स्वर तथा ३१ व्यंजन है। डॉ. हरदेव बाहरी ने वैदिक स्वरों की संख्या १४ मानी है। वैदिक ध्वनियों का वर्गीकरण निम्न ढंग से किया जा सकता है :

वैदिक स्वर - (संख्या १३)

मूल स्वर - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ

संयुक्त स्वर - ए, ओ, ऐ, औ

वैदिक व्यंजन - (संख्या ३१)

स्थान	**अघोष**		**घोष**			**अघोष**	**अर्धस्वर**
	अल्पप्राण	**महाप्राण**	**अल्पप्राण**	**महाप्राण**	**अल्पप्राण**	**उष्म / महाप्राण**	**अन्तस्थ**
कण्ठ	क	ख	ग	घ	ङ		
तालण्य	च	छ	ज	झ	ञ	श	य
मूर्धन्य	ट	ठ	ड, ळ	ढ, ळह्	ण	ष	र
दन्त्य	त	थ	द	ध	न	स	ल
ओष्ठ	प	फ	ब	भ	म		व
				ह	(•) अनुस्वार	(:) विसर्ग जिव्हामूलीय उपध्मानीय	

वैदिक संस्कृत की विशेषताएँ :

१) वैदिक संस्कृत श्लिष्ट योगात्मक है।

२) वैदिक संस्कृत में संगीतात्मक एवं बलात्मक दोनों ही स्वराघात मौजूद है।

३) वैदिक संस्कृत में तीन लिंग (पुलिंग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसक लिंग) तीन वचन (एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन) तीन वाच्य (कर्तुवाच्य, कर्मवाच्य एवं भाववाच्य) एवं आठ विभक्तियों (कर्ता, सम्बोधन, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण) का प्रयोग मिलता है।

४) वैदिक संस्कृत में धातुओं के रूप आत्मने एवं परस्मै दो पदों में चलते थे। कुछ एक धातुएँ उभयपदी थीं।

५) डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार वैदिक संस्कृत में केवल तत्पुरूष, कर्मधारय, बहुब्रीहि एवं द्वन्द्व ये चार ही समास मिलते हैं।

६) वैदिक संस्कृत में काल एवं भाव (क्रियाएं) मिलाकर क्रिया के १० प्रकार के रूपों का प्रयोग मिलता है।

चार काल :	१) लट् (वर्तमान)	२) लिट् (परोक्ष या सम्पन्न)
	३) लङ् (अवद्यतन या सम्पन्न)	४) लुङ (सामान्य भूत)
छह भाव :	१) लोट् (आज्ञा)	२) विधि लिङ् सम्भावनार्थ
	३) आर्शीलिङ् (इच्छार्थे)	४) लृङ् (हेतु हेतु समुद्भाव या निर्देश)
	५) लेट (अभिप्राय) और	६) लेङ् (निर्बन्ध)।

क्रिया के १० काल और भाव भेद को ही लकार कहते है।

७) मूल भारोपीय के ह्रस्व मूल स्वर अ, एँ, ओं वैदिक संस्कृत में 'अ' हो गए हैं।

८) मूल भारोपीय भाषा तीनों मूल दीर्घ स्वर आ, ए, ओ वैदिक संस्कृत में 'आ' हो गए हैं।

९) मूल भारोपीय अंतस्थ न्, म, का वैदिक संस्कृत में लोप हो गया है।

१०) मूल भारोपीय भाषाओं तीन प्रकार का 'क' वर्ग है - वैदिक संस्कृत में केवल एक प्रकार है।

११) वैदिक संस्कृत में 'च' वर्ग और 'ट' वर्ग नवीन ध्वनियाँ हैं।

१२) वैदिक संस्कृत में 'लृ' स्वर का प्रयोग प्रचलित था।

१३) वैदिक संस्कृत में मध्य स्वरागम / स्वरभक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

१४) वैदिक संस्कृत में उपसर्ग धातु से भी पृथक प्रयुक्त होते थे।

१५) वैदिक संस्कृत में संधि नियमों में पर्याप्त शिथिलता थी।

१६) वैदिक संस्कृत में ह्रस्व और दीर्घ के साथ प्लुत का भी प्रयोग प्रचलित था।

१७) दो स्वरों के मध्य में ड > ळ और ढ > लृड्ड हो जाता था ईडे > ईळे, भौढुषे > मीलह्रुषे। संस्कृत में ये दोनों ध्वनियाँ नहीं हैं। हिंदी में ळ, ळह् में विकसित रूप ड़, ढ़ हैं।

१८) धातु रूपों में लट् लकार का प्रयोग होता था, वह लौकिक संस्कृत में नहीं रहा।

२) लौकिक संस्कृत ८०० ई. पू. – ५०० ई. पू.

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का वह रूप जिसका पाणिनि की 'अष्टध्यायी' में विवेचन किया गया है। लौकिक संस्कृत को संस्कृत, क्लैसिकल संस्कृत इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। भाषा के अर्थ में संस्कृत (संस्कार की गई) शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वैदिक काल में भाषा के तीन भौगोलिक रूप (उत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी) प्रचलित

थे। लौकिक संस्कृत का मूलाधार उत्तर में बोली जानेवाली बोलचाल का रूप ही माना जा सकता है। तत्कालीन समय में वही प्रमाणिक भाषा थी। उत्तरी भाषा में आर्य भाषा - भाषियों में कई भौगोलिक बोलियाँ जन्म ले चुकी थी, जो आगे चलकर विभिन्न प्राकृतों, अपभ्रंशो एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के जन्म का कारण बनी।

डॉ. हार्नले, डॉ. ग्रियर्सन तथा थेबर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत को बोलचाल की भाषा नहीं माना। किन्तु डॉ. भांडारकर, डॉ. गुणे ने उनके मत का खंडन कर अनेक तर्क देकर इसे बोलचाल की भाषा सिद्ध किया है।

संस्कृत साहित्य का प्रयोग महाभारत - रामायण से लेकर शाहजहाँ के काल तक हुआ है। भारत की सभी भाषाओं ने इससे अगणित शब्द लिए है साथ ही आस-पास की तिब्बती, अफगानिस्तानी, चीनी, जापानी, कोरियाई और पुर्वी द्वीप समूहों की भाषाएँ तथा अरबी इत्यादि ने भी संस्कृत से शब्द ग्रहण किए है। भारत की भाषाओं के लिए यह अब भी कामधेनु है। इसने अनेक भाषाओं को अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया है। यह भाषा (उत्तर, मध्यप्रदेश तथा पूर्व) तीनों भागों के लोगों में शिष्ट भाषा, साहित्यिक या राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी।

लौकिक संस्कृत की विशेषताएँ :

१) लौकिक संस्कृत में उपसर्गो का स्वतंत्र प्रयोग नहीं रहा।

२) संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलात्मक स्वर का प्रयोग होने लगा।

३) लौकिक संस्कृत के व्यंजनों में ळ, ळह् नहीं रहे।

४) लौकिक संस्कृत में शब्द रूपों और धातु रूपों में वैकल्पिक रूपों की न्यूनता हो गई।

५) संधि नियमों की अनिवार्यता हो गई।

६) लट् आकार का अभाव हो गया।

७) भाषा में स्वरों का प्रयोग समाप्त हो गया।

८) वैदिक संस्कृत में ५२ ध्वनियाँ थी, उनमें से चार ध्वनियाँ लौकिक संस्कृत में लुप्त हो गई और ४८ ध्वनियाँ शेष रहीं।

९) लौकिक संस्कृत में कृ, प् धातु में ही मिलता है।

१०) लौकिक संस्कृत में अनुस्वार के दो रूप हो गए - अनुस्वार - अनुनासिक।

११) लौकिक संस्कृत में स्वरों का प्रयोग समाप्त हो गया।

१२) कृ प्रत्ययों आदि में अनेक प्रत्ययों के स्थान पर एक प्रत्यय रहा। पंद्रह प्रत्ययों के स्थान पर केवल तुम प्रत्यय है।

४.३ मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ : ५०० ई. पू. - १००० ई. तक

जिस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा को साधारणतया संस्कृत कह दिया जाता है, उसी प्रकार भारतीय आर्यभाषा के ५०० ई. पू. से १००० ई. तक प्रचलित मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के लिए प्राकृत शब्द का प्रयोग किया जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा

के १५०० वर्षों तक प्रचलित स्वरूप के सम्यक् विवेचन के लिए उसे तीन काल में बाँटा जा सकता है।

१. प्रथम प्राकृत या पालि (५०० ई. पू. - १ ई.)
२. द्वितीय प्राकृत या साहित्यिक प्राकृत (१ ई. - ५०० ई.)
३. तृतीय प्राकृत या अपभ्रंश (५०० ई. - १००० ई.) तक

१. प्रथम प्राकृत या पालि (५०० ई. पू. - १ ई.)

'पालि' का अर्थ 'बुध्द वचन' (पा रक्खतीति बुद्ध वचनं इति पालि) होने से यह शब्द केवल मूल त्रिपिटक ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त हुआ। मध्यकालीन भारतीय भाषाओं की महत्त्वपूर्ण भाषा 'पालि' है। इसका उदय वैदिक और लौकिक संस्कृत की प्रतिक्रिया में हुआ था। बुद्ध ने अपना उपदेश इसी भाषा में दिया। इसकी वजह से 'पालि' शब्द भाषा के लिए प्रयुक्त किया गया है। 'पालि' शब्द का उल्लेख चौथी शताब्दी में लंका में लिखित ग्रंथ 'दीप बंस' में आचार्य बुद्धोष के द्वारा किया गया है। भाषा के रूप में 'मागधी' या मागध भाषा का व्यवहार होता था। भाषा के अर्थ में पालि का प्रयोग अत्याधुनिक है और पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा हुआ है। पालि शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद है।

विद्वान	**व्युत्पत्ति**
आचार्य विघुशेखर	पन्ति > पति > पट्टी > पल्लि > पालि
मैक्स वालेसर	पाटलि पुत्र या पाडलि
भिक्षु जगदीश कश्यप	परियाय > पलियाय > पालियाय > पालि
भण्डारकर व वाकर नागल	प्राकृत > पाकट > पाअड > पाउल > पालि
भिक्षु सिद्धार्थ	पाठ > पाळ > पाळि > पालि
कोसाम्बी	पाल् > पालि
उदयनारायण तिवारी	पा > णिञ् > लि = पालि

व्युत्पत्ति की तरह ही पालि भाषा के प्रदेश को लेकर भी विद्वानों में काफी मतभेद है। विभिन्न विद्वानों द्वारा वर्णित पालि भाषा का प्रदेश निम्नांकित है -

विद्वान	**पालि भाषा प्रदेश**
श्रीलंकाई बौद्ध तथा चाइल्डर्स	मगध
वेस्टरगार्ड तथा स्टेनकोनो	उज्जयिनी या विन्ध्य प्रदेश
ग्रियर्सन व राहुल	मगध
ओलडेन वर्ग	कलिंग
रीज़ डेविड्ण	कोसल
सुनीति कुमार चटर्जी	मध्यप्रदेश की बोली
देवेन्द्रनाथ शर्मा	मथुरा के आसपास का भूभाग
उदयनारायण तिवारी	मध्यप्रदेश की बोली

सर्वसम्मति से विद्वानों ने पालि भाषा का प्रदेश, मध्य प्रदेश की बोली को स्वीकार किया है।

पालि की वर्ण संघटना या ध्वनियाँ :

पालि के प्रसिद्ध वैयाकरण कच्चायन के अनुसार पालि में ४१ ध्वनियाँ होती है तथा मोगलान के अनुसार पालि में कुल ४३ ध्वनियाँ होती हैं।

- कच्चायन के अनुसार पालि में ८ स्वर तथा ३३ व्यंजन होते है तथा मोगलान के अनुसार १० स्वर तथा ३३ व्यंजन होते हैं।

पालि में वर्णों का वर्गीकरण निम्न ढंग से किया जा सकता है :

स्वर :
ह्रस्व - अ, इ, उ, ऍ, ओं
दीर्घ - आ, ई, ऊ, ए, ओ

व्यंजन :
क वर्ग - क, ख, ग, घ, ङ
च वर्ग - च, छ, ज, झ, ञ
ट वर्ग - ट, ठ, ड, ढ, ण
त वर्ग - त, थ, द, ध, न
प वर्ग - प, फ, ब, भ, म
य, र, ल, व, स, ह, ळ, अं

पालि भाषा की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ :

१) अनुस्वार (अं) - पालि में स्वतंत्र ध्वनि है जिसे पालि वैयाकरण ने निम्गाहीत नाम से अभिहित किया है। (बिन्दु निग्रहीत)

२) टर्नर के अनुसार पालि में वैदिकी की भाँति ही संगीतात्मक एवं बलात्मक दोनों स्वराघात थी। ग्रियर्सन और भोलानाथ तिवारी पालि में बलात्मक स्वराघात मानते हैं जबकि जूल ब्लाक किसी भी स्वराघात को नहीं स्वीकार करते हैं।

३) पालि में तीन लिंग, दो वचन (एक वचन और बहुवचन) का प्रयोग मिलता है। पालि में द्विवचन नहीं होता है।

४) पालि हलन्त रहित, छह कारक, आठ लकार (चार काल, चार भाव) तथा आठ गण युक्त भाषा है।

- प्रथम प्राकृत (पालि) के अंतर्गत ही शिलालेखी प्राकृत या अभिलेखी प्राकृत भी आता है। इसके अधिकांश लेख शिला पर अंकित होने के कारण इसकी संज्ञा 'शिलालेखी प्राकृत' हुई।

२. द्वितीय प्राकृत या प्राकृत : (१ ई. सन से ५०० ईस्वी. तक)

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के द्वितीय भाग को प्राकृत कहा जाता है। प्राकृत प्राचीनतम प्रचलित जनभाषा है। नमि साधु ने इसका निर्वचन करते हुए लिखा है - "प्राक् पूर्व कृतं प्राकृतं" अर्थात "प्राक कृत" शब्द से इसका निर्माण हुआ है जिसका अर्थ है पहले की बनी हुई। जो भाषा मूल से चली आ रही है उसका नाम 'प्राकृत' है।

"प्रकृति : संस्कृतं तत्र भवं तत आगतंवा प्राकृतम" अर्थात प्रकृति या मूल संस्कृत है और जो संस्कृत से आगत है, वही प्राकृत है। (हेमचन्द्र)

इस तरह हम प्राकृत की व्युत्पत्ति दो प्रकार से देखते हैं।
१) प्राकृत प्राचीनतम जनभाषा है। और
२) प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है।

- अब प्रायः सभी विद्वानो ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है।

- वररूचि ने 'प्राकृत प्रकाश' ग्रन्थ में प्राकृत भाषा के चार भेद बताए है जो निम्नांकित हैं।

अ) महाराष्ट्री
ब) पैशाची
स) मागधी और
द) शौरसेनी

- हेमचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्राकृत व्याकरण' में प्राकृत भाषा के तीन और भेदों की चर्चा की जो निम्न है।

अ) आर्षी (अर्धमागधी)
ब) चुलिका पैशाची
स) अपभ्रंश

महाराष्ट्री : महाराष्ट्री को प्राकृत वैयाकरणों ने आदर्श परिनिष्ठत तथा मानक प्राकृत माना है। इस प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है। जार्ज ग्रियर्सन एवं जूल ब्लाक ने महाराष्ट्री प्राकृत से ही मराठी की उत्पत्ति मानी है।

शौरसेनी प्राकृत : मूलतः शूरसेन या मथुरा के आसपास की बोली थी। मध्यप्रदेश की भाषा होने के कारण शौरसेनी का बहुत आदर था। वररूचि ने शौरसेनी प्राकृत को ही प्राकृत-भाषा का मूल माना है।

पैशाची प्राकृत : इसे पैशाचिकी, पैशाचिका, ग्राम्य भाषा, भूतभाषा, भूतवचन, भूतभाषित आदि नामों से भी पुकारा जाता है।

मागधी प्राकृत : मगध देश की भाषा रही है। मार्कण्डेय ने शौरसेनी से मागधी की व्युत्पत्ति बताई है।

अर्धमागधी प्राकृत :

अर्धमागधी प्राकृत के सम्बंध में जार्ज ग्रियर्सन ने बताया कि यह मध्य देश (शूरसेन) और मगध के मध्यवर्ती देश (अयोध्या या कोसल) की भाषा थी।

अर्धमागधी का प्रयोग मुख्यतः जैन साहित्य में हुआ है। भगवान महावीर का सम्पूर्ण उपदेश इसी भाषा में निबद्ध है।

३. तृतीय प्राकृत (अपभ्रंश) : (ईस्वी ५०० से ईस्वी १०००)

'अपभ्रंश' मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है। इसलिए विद्वानों ने 'अपभ्रंश' को एक सन्धिकालीन भाषा कहा है। व्याकरण के नियमों के अनुकूल परिष्कृत और व्याकरणबद्ध साहित्यिक प्राकृतों की सापेक्षता में वैय्याकरणों ने जनसामान्य की स्वाभाविक बोलियों को 'अपभ्रंश' अर्थात बिग़ड़ी हुई भाषा की संज्ञा दी है।

ईसा पूर्व २०० में महाभाष्यकार पतंजलि ने अपभ्रंश शब्द का प्रयोग शब्दों के अपणिनीय या ऊसाधु प्रयोग के अर्थ में किया है।

- 'अपभ्रंश' शब्द का सर्वप्रथम प्रामाणिक प्रयोग पतंजलि के 'महाभाष्य' में मिलता है। महाभाष्यकार ने 'अपभ्रंश' का प्रयोग 'अपशब्द' के समानार्थक के रूप में किया है।

- अपभ्रंश का सबसे प्राचीन उदाहरण भरतमुनि के 'नाट्य-शास्त्र' में मिलते हैं, जिसमें 'अपभ्रंश' को 'विभ्रष्ट' कहा गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "अपभ्रंश नाम पहले पहल बलभी के राजा धीरसेन द्वितीय के शिलालेख में मिलता है जिसमें उसने अपने पिता गुहासेन (वि. स. ६५० के पहले) को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का कवि कहा है।" अपभ्रंश को विद्वानों ने विभ्रष्ट, आंभीर, अवहंस, अवहट्ट, पटमंजरी, अवहत्थ, औहट, अवहट आदि नामों से भी पुकारा है।

विभिन्न विद्वानों ने अपभ्रंश के निम्नलिखित भेद बताए हैं।

विद्वान	अपभ्रंश के भेद
नमि साधु	१) उपनागर २) आभीर ३) ग्राम्य
मार्कण्डेय	१) नागर २) उपनागर ३) प्राचड
याकोबी	१) पूर्वी २) पश्चिमी ३) दक्षिणी ४) उतरी
तागरे	१) पूर्वी २) पश्चिमी ३) दक्षिणी
नामवर सिंह	१) पूर्वी और पश्चिमी

अपभ्रंश की ध्वनियाँ :

डॉ. उदयनारायण तिवारी ने अपभ्रंश की ध्वनियों का वर्गीकरण निम्नलिखित से किया है :

स्वर :

ह्रस्व - अ, इ, उ, ऍ, ओं

दीर्घ - आ, ई, ऊ, ए, ओ

व्यंजन :

कण्ठय् - क, ख, ग, घ

तालव्य - च, छ, ज, झ

मूर्धन्य - ट, ठ, ड, ढ, ण

दन्त्य - त, थ, द, ध (न - पूवी अप०)

ओष्ठ्य - प, फ, ब, भ, म

अन्तस्थ - य, र, ल, व (श - पूर्वी अपभ्रंश)

उष्म - स, ह

स्वर - १० **व्यंजन - ३०**

अपभ्रंश भाषा की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ :

१. अपभ्रंश को उकार बहुलता भाषा कहा जाता है।

२. अपभ्रंश वियोगात्मक हो रही थी अर्थात - अपभ्रंश में विभक्तियों के स्थान पर स्वतंत्र परसर्गो का प्रयोग होने लगा था।

३. अपभ्रंश में दो वचन (एकवचन और बहुवचन) और दो ही लिंग (पुलिंग और स्त्रीलिंग) मिलते हैं।

४. अवहट्ट अपभ्रंश का ही परवर्ती या परिवर्तित रूप हैं।

५. डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी को 'अवहट्ट' कहा है।

६. 'अवहट्ट' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग - ज्योतिश्वर ठाकुर ने अपने 'वर्णरत्नाकर' ग्रन्थ में किया है।

७. अपभ्रंश में रूपों की संख्या कम हो गई।

८. अपभ्रंश में नपुंसकलिंग समाप्त हो गया।

९. अपभ्रंश में कहीं कहीं आदि स्वर का लोप हो जाता है। जैसे - अरण्य > रण्ण, अरघट्ट > रहट्ट

१०. अपभ्रंश में शब्द का आदि 'य', 'ज' में परिणत हो जाती है। जैसे - याती > जाति, यमल > जमल, यौवन > जोवन।

११. मध्य व्यंजनों में अपभ्रंश का प्रायः लोप हो जाता है और महाप्राण व्यंजनों के स्थान पर 'ख' शेष रह जाता है।

जैसे - राजन > राअ, पाद > पाअ, चतुर्थ > चउत्थ, सखि > सहि, दीर्घ > दीह, शोभा > सीह,

१२. अपभ्रंश में आदि अक्षर के स्वर को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। क्योंकि स्वराघात प्रायः आदि अक्षर पर पड़ता है।

जैसे - ध्यान > झाण, माणिक्य > माणिक, घोटक > घोडअ, गंभीर > हिर।

४.४ आधुनिक भारतीय आर्य भाषा : ई. वी. सन् १००० से अब तक

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्भव १००० ई. के लगभग हुआ है। इसका विकास अपभ्रंश से हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं का काल तब से अब तक माना गया है। इस काल में प्रयुक्त भाषाओं की गणना आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में की जाती है। इस वर्ग की भाषाओं के विकास के कुछ समय पश्चात से सम्बंधित साहित्य प्राप्त होता है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का सर्वप्रथम वर्गीकरण डॉ. ए. एफ. आर. हार्नले ने सन् १८८० में किया। डॉ. हार्नले ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को ४ वर्गों में विभाजित किया है, जो निम्नांकित है -

१) पूर्वी गौडियन - पूर्वी हिन्दी, बंगला, असमी, उडिया।

२) पश्चिमी गौडियन - पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी।

३) उतरी गौडियन - गढ़वाली, नेपाली, पहाड़ी।

४) दक्षिणी गौडियन - मराठी।

डॉ. हार्नले के अनुसार जो आर्य मध्यप्रदेश अथवा केन्द्र में थे 'भीतरी आर्य' कहलाए और जो चारों ओर फैले हुए थे 'बाहरी आर्य' कहलाए।

लगभग ई. १००० के आस-पास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से उपर्युक्त आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ। आधुनिक भाषाओं में भारतीय साहित्य की रचना तो ई. १००० में या उसके बाद हुई, किन्तु उसका जन्म ई. १००० से पहले हो चुका था। वस्तुतः कोई भी भाषा जन्म होते ही साहित्य की भाषा नहीं बनती। पैदा होने के सौ-डेढ़ सौ वर्ष बाद ही स्वीकृति मिलने तथा उनका स्वरूप कुछ निश्चित होने पर ही लोग उसे साहित्य - रचना के लिए अपनाते हैं।

डॉ. जार्ज ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का वर्गीकरण निम्नांकित ढंग से प्रस्तुत किया है।

१. बाहरी उपशाखा – :

क) उतरी - पश्चिमी समुदाय - i) लहँदा ii) सिन्धी

ख) दक्षिणी समुदाय - i) मराठी

ग) पूर्वी समुदाय - i) उडिया ii) बिहारी iii) बंगला iv) असमिया

२. मध्य उपशाखा – :

क) मध्यवर्ती समुदाय - i) पूर्वी हिन्दी

३. भीतरी उपशाखा – :

क) केन्द्रीय समुदाय -

i) पश्चिमी हिन्दी ii) पंजाबी iii) गुजराती iv) भीली

iv) खानदेशी ii) राजस्थानी

ख) पहाड़ी समुदाय -

i) पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली ii) मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी iii) पश्चिमी - पहाड़ी

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना ध्वनिगत एवं व्याकरणगत आधारों पर करते हुए अपना वैज्ञानिक वर्गीकरण निम्न वर्गों में प्रस्तुत किया -

१) उदीच्य - सिन्धी, लहँदा, पंजाबी

२) प्रतीच्य - राजस्थानी, गुजराती

३) मध्य देशीय - पश्चिमी हिन्दी

४) प्राच्य - पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, असमिया, बंगला

५) दक्षिणात्य - मराठी

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने डॉ. चटर्जी के वर्गीकरण में सुधार करते हुए अपना निम्नांकित वर्गीकरण प्रस्तुत किया -

१) उदीच्य - सिन्धी, लहँदा, पंजाबी

२) प्रतीच्य - गुजराती

३) मध्य देशीय - राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी

४) प्राच्य - उड़िया, असमिया, बंगला

५) दक्षिणात्य - मराठी

डॉ. हरदेव बाहरी ने आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है -

हिन्दी वर्ग	**हिन्दीतर (अ - हिन्दी) वर्ग**
मध्य पहाड़ी, राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी	उतरी - (नेपाली)
हिन्दी, बिहारी (ये सभी हिन्दी की उपभाषाएँ है।)	पश्चिमी - (पंजाबी, सिन्धी, गुजराती) दक्षिणी - (सिंहली, मराठी)
	पूर्वी - (उड़िया, बंगला, असमिया)

प्रमुख आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताएँ :

१) सिन्धी शब्द का सम्बन्ध संस्कृत सिन्धु से है। सिन्धु देश में सिन्धु नदी के दोनों किनारों पर सिन्धी भाषा बोली जाती है।

२) लहँदा का शब्दगत अर्थ है 'पश्चिमी'। इसके अन्य नाम पश्चिमी पंजाबी, हिन्दकी, जटकी, मुल्तानी, चिभाली, पोठवारी आदि है।

३) पंजाबी शब्द 'पंजाब' से बना है जिसका अर्थ है पाँच नदियों का देश। पंजाबी की अपनी लिपि लंए थी जिसमें सुधार कर गुरू अंगद ने गुरूमुखी लिपि बनाई।

४) पंजाबी की मुख्य बोलियाँ माझी, डोगरी, दोआबी, राठी आदि है।

५) गुजराती गुजरात प्रदेश की भाषा है। गुजरात का सम्बन्ध 'गुजर' जाति से है।

६) मराठी महाराष्ट्र प्रदेश की भाषा है। इसकी प्रमुख बोलियाँ कोंकणी, नागपुरी, कोष्ठी, माहारी आदि है।

७) मराठी की अपनी लिपि देवनागरी है किन्तु कुछ लोग मोड़ी लिपि का भी प्रयोग करते हैं।

८) बंगला संस्कृत शब्द बंग + आल (प्रत्यय) से बना है। यह बंगाल प्रदेश की भाषा है। बंगला प्राचीन देवनागरी से विकसित बंगला लिपि में लिखी जाती है।

९) असमी (असमिया) असम प्रदेश की भाषा है। इसकी मुख्य बोली विश्नुपुरिया है। असमी की अपनी लिपि बंगला है।

१०) उड़िया प्राचीन उत्कल अथवा वर्तमान उड़ीसा (ओडिसा) की भाषा है। इसकी प्रमुख बोली गंजामी, सम्भलपुरी, भत्री आदि है।

११) उड़िया भाषा बंगला से बहुत मिलती-जुलती है, किन्तु इसकी लिपि ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित है।

यहाँ सभी आधुनिक भाषाओं का परिचय दिया जा रहा है।

मराठी :

मराठी महाराष्ट्र की भाषा है। मराठी का नाम संस्कृत शब्द 'महाराष्ट्रीय' से विकसित है। इसकी व्युत्पत्ति महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुई है। पूना के आस-पास बोली जाने वाली भाषा ही परिनिष्ठ मराठी मानी जाती है। इसकी लिपि देवनागरी है। नित्य के व्यवहार में कहीं - कहीं मोड़ी का प्रयोग भी होता है। मातृभाषियों की संख्या के आधार पर मराठी विश्व में दसवें और भारत में तीसरे स्थान पर हैं। मराठी भाषियों की अनुमानित संख्या लगभग १० करोड़ है। मराठी की प्रमुख बोलियाँ कुणबी, कोंकणी, हलवी आदि है। १९७१ की जनगणना के अनुसार मराठी बोलनेवालों की संख्या ४,१७,२३,८९३ थी। मराठी में प्राचीन और आधुनिक साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है।

गुजराती :

गुजराती नाम का सम्बन्ध गुर्जर जाती से है। भारत की दूसरी भाषाओं की तरह गुजराती भाषा का जन्म भी संस्कृत भाषा से हुआ है। गुजराती भाषा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में से एक है और इसकी विकास शौरसेनी प्राकृत के परवर्ती रूप 'नागर अपभ्रंश' से हुआ है। गुजराती भाषा का क्षेत्र गुजरात सौराष्ट्र और कच्छ के अतिरिक्त महाराष्ट्र का सीमावर्ती प्रदेश तथा राजस्थान का दक्षिण पश्चिमी भाग भी है। सौराष्ट्री और कच्छी इसकी अन्य प्रमुख बोलियाँ हैं।

गुजराती की अपनी लिपि है जो कि देवनागरी का ही भिन्न रूप है। इसमें शिरोरेखा नहीं लगाई जाती है। गुजराती की मुख्य बोलियाँ पट्टती, काठियावाडी, कुरली इत्यादी है।

भारत के अलावा बांग्लादेश, बोत्सवाना, कनाडा, फिजी, केन्या, मलावी, मॉरीशस, मोंजाम्बिक, ओमान, पाकिस्तान, सिंगापूर, दक्षिण आफ्रिका, तंजानिया, युंगाडा आदि में भी गुजराती बोली जाती है।

अक्षयदासा (१५९१ - १६५६), प्रेमानंद भट्टा (१६३६-१७३४) और श्यामलदास भट्टा (१६९९ - १७६९) यह गुजराती के तीन महान कवि है।
गुजराती भाषा गुजराती लिपि में लिखी जाती है। २०११ की जनगणना के मुताबिक देश में ४.७४ फीसदी लोग गुजराती बोलते है।

राजस्थानी :

अधिकांश विद्वानों के मतानुसार, राजस्थानी भाषा का विकास प्राकृत या शौरसेनी से हुआ है। किंतु डॉ. चाटुर्ज्या इसका विकास अशोककालीन सौराष्ट्री प्राकृत से मानते हैं। राजस्थानी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में से एक है। आज के दौर में यह केवल राजस्थान की सीमाओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि मध्यप्रदेश, गुजरात के कुछ भाग पाकिस्तान के पूर्वी भाग और दक्षिण पूर्वी सीमा प्रदेशों में भी बोली जाती है।

डॉ. ग्रियर्सन ने राजस्थानी की पाँच बोलियाँ मानी है।

१) पश्चिमी राजस्थानी (मारवाडी)

२) उत्तर पूर्वी राजस्थानी (मेवाती अहीरवाटी)

३) मध्यपुर्वी या पूर्वी राजस्थानी (ढूँढ़ाती हाडौती)

४) दक्षिण - पूर्वी राजस्थानी (मालवी)

५) दक्षिणी राजस्थानी (निमाडी)

इनके अलावा राजस्थान में बंजारा भाषा भी बोली जाती है जो कि एक स्वतंत्र भाषा है। राजस्थानी साहित्य का क्षेत्र समृद्ध है। प्रसिद्ध गुजराती काव्य पद्मनाभ कविकृत राजस्थानी या मारवाडी भाषा की ही देन है।

पंजाबी :

पंजाबी हिन्द - यूरोपीय, हिन्द इरानी, हिन्द आर्य भाषा परिवार की देन है। भारत में यह मुख्यत: पंजाब में बोली जाती है। पाकिस्तान की एक बडी आबादी भी पंजाबी बोलती है। यह विश्व की ११ वीं सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। कम से कम पिछले ३०० वर्षो से लिखित पंजाबी भाषा का मानक रूप, मानक बोली पर आधारित है जो कि ऐतिहासिक माझा क्षेत्र की भाषा है। ग्रियर्सन ने पूर्वी पंजाबी को 'पंजाबी' और पश्चिमी पंजाबी को 'लहंदा' कहा है। पंजाबी की एक तीसरी उपभाषा 'डोगरी' है जो कि जम्मू काश्मीर में बोली जाती है।

पंजाबी में सबसे पुरानी रचनाएँ नाथयोगी काल की है, जो नौवीं से चौदहवीं शताब्दी की है, जब पंजाब सामाजिक, धार्मिक आंदोलनों का मुख्य केन्द्र था।

गुरु नानक पंजाबी भाषा, साहित्य और संस्कृति के जनक है। प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने पुराने शब्दादेशी ढांचे को रूपमय मानस छवियों में बदल दिया। पंजाबी भाषा की लिपि गुरुमुखी है।

तेलुगु :

तेलुगु आंध्र प्रदेश और तेलंगना राज्यों की मुख्य भाषा और राजभाषा है। ये द्रविड़ भाषा परिवार के अंतर्गत आती है। तेलुगु शब्द का मूलरुप संस्कृत में त्रिलिंग है। अधिकांश संस्कृत शब्दों से संकलित भाषा 'आंध्र" भाषा के नाम से व्यवहृत होती है। डॉ. चिलुकूरि नारायण राव के मतानुसार तेलुगु भाषा द्रविड परिवार की नहीं किंतु प्राकृतजन्य है। इस भाषा मे करीब ७५ प्रतिशत संस्कृत शब्दों का सम्मिश्रण है। एक बहुत ही मधुर भाषा है। स्वरांत भाषा होने के कारण तेलुगु संगीत के लिए अत्यंत उपयुक्त मानी गई है।

तेलुगु लिपि मोतियों की माला के समान सुंदर प्रतीत होती है। तेलुगु और कन्नड लिपियों में बड़ा ही सादृश्य है।

तेलुगु साहित्य का विभाजन (१) पुराणकाल (२) काव्यकाल (३) हासकाल और (४) आधुनिककाल में बाँटा गया है।

कन्नड :

कन्नड भारत के कर्नाटक राज्य में बोली जाने वाली भाषा है। लगभग ४.५० करोड़ लोग कन्नड भाषा प्रयोग करते है। विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली ३० भाषाओं की सुची में कन्नड २७ वें स्थान पर आती है। कन्नड अन्य द्रविड भाषाओं की तरह है। कन्नड संस्कृत भाषा से बहुत प्रभावित है। कर्नाटक के अलावा केरल, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, गोवा और तमिलनाडु में कन्नड बोली जाती है। कन्नड भाषा के विकासक्रम की चार अवस्थाऐं मानी गई हैं, जो इस प्रकार है -

१) अतिप्राचीन कन्नड
२) हक कन्नड
३) नड गन्नड
४) होस गन्नड

वर्तमान कन्नड की लिपि देवनागरी लिपि से भिन्न है। कन्नड़ की वर्णमाला में कुल ४७ वर्ण है। आजकल इसकी संख्या ५२ तक बढ़ा दी गई है।

कन्नडा की लिपि को ब्राह्मी से व्युत्पन्न लिपि माना जाता है।

तमिल :

तमिल विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। इसकी उत्पति के संबंध में अभी तक यह निर्णय नहीं हो सका है कि किस समय इस भाषा का आरम्भ हुआ। तमिल भाषा में उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर यह निर्विवाद निर्णय हो चुका है कि तमिल भाषा ईसा से कई सौ वर्ष पहले ही सुसंस्कृत और सुव्यवस्थित हो गई थी।

तमिल, भारत के दक्षिणी भाग के अलावा, श्रीलंका, मॉरीशस और सिंगापूर, मलेशियाँ में भी बोली जाती है।

तमिल साहित्य कम से कम पिछले दो हजार वर्षो से अस्तित्व में है। जो सबसे आरंभिक शिलालेख पाए गए है वे तीसरी शताब्दी ईसापूर्व के आस-पास के हैं। तमिल भाषा वह एलुतु लिपि में लिखी जाती है। अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में इसमें कम अक्षर हैं। कुछ विद्वानों ने संस्कृत भाषा को द्रविड़ शब्द से तमिल शब्द की उत्पति मानकर द्रविड़ > द्रविड > द्रमिड > द्रमिल > तमिल आदि रुप दिखाकर तमिल की उत्पति सिद्ध की है, किन्तु तमिल के अधिकांश विद्वान इस विचार से सर्वथा असहमत है।

मलयालम :

मलयालम भारत के केरल प्रान्त में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है। मलयालम को कैरली भी कहते हैं। केरल के अलावा ये तमिलनाडु के कन्याकुमारी, कर्नाटक, लक्षद्वीप तथा अन्य कई देशों में बसे मलयालियों द्वारा बोली जाती है। मलयालम की उत्पति लगभग १ हजार वर्ष तक मानी गई है। यह भाषा संस्कृतजन्य नहीं है। कई विद्वानों का मानना हैं कि मलयालम का साहित्य उस समय पल्लवित होने लगा था जबकि तमिल का साहित्य फल फूल चुका था। संस्कृत साहित्य की ही भाँति तमिल साहित्य को भी हम मलयालम की प्यास बुझाने वाली स्त्रोतस्विनी कह सकते है।

४.५ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने 'भाषा' शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हुई हैं। इसी के साथ प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में वैदिक तथा लौकिक संस्कृत, मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा और आधुनिक भारतीय भाषाओं का सामान्य परिचय आदि का अध्ययन किया। भाषा मनुष्य के अभिव्यक्ति का साधन हैं। उसे वाणी के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक भाषाओं के विकासक्रम और विशेषताओं को प्रस्तुत किया है।

४.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१) भारत में २००१ की जनगणना के अनुसार कितनी मुख्य भाषाएँ है?

२) आर्य भाषा किस परिवार की भाषा है?

३) प्राचीन भारतीय आर्यं भाषा का प्राचीनतम नमूना किस साहित्य में दिखाई देता है?

४) वैदिक साहित्य कितने भागों में बाँटा है?

५) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा कितने कालों में बाँटा है?

४.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में वैदिक और लौकिक संस्कृत की चर्चा करते हुए उसकी विशेषताएँ लिखिए।

२) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के विकासक्रम पर चर्चा करें।

३) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का परिचय देकर विशेषताएँ लिखिए।

४) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की विशद चर्चा करें।

४.८ संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

३) हिंदी भाषा का उद्भव और विकास - डॉ. उदयनारायण तिवारी

❖❖❖❖

५

हिंदी का भाषिक स्वरूप

इकाई की रुपरेखा:

५.०. इकाई का उद्देश्य

५.१. प्रस्तावना

५.२. हिंदी स्वरों और व्यंजनों का वर्गीकरण

५.३. सारांश

५.४. दीर्घोत्तरी प्रश्न

५.५. लघुत्तरी प्रश्न

५.६. संदर्भ ग्रंथ

५.०. इकाई का उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई में हिंदी के भाषिक स्वरुप का छात्र अध्ययन करेंगे |
- हिंदी के स्वरों को जान जाएँगे |
- हिंदी के व्यंजनों के वर्गीकरण की जानकारी प्राप्त करेंगे |

५.१. प्रस्तावना

मनुष्य में विविध ध्वनियों के उच्चारण करने की क्षमता होती है | उसी क्षमता के अनुसार अर्थात इसका ज्ञान वार्तालाप के समय होता है और विविध गानों के आरोह-अवरोह के संदर्भ से ध्वनि की विविधता का सुस्पष्ट ज्ञान होता है | भाषा विज्ञान में मनुष्य द्वारा ध्वनियों का वर्गीकरण और विश्लेषण किया जाता है, जिनका भावाभिव्यक्ति में महत्व होता है | सभी भाषाओं में स्वर और व्यंजन दो प्रकार की ध्वनियाँ होती है |

५.२. हिंदी स्वरों और व्यंजनो का वर्गीकरण

हिंदी भाषा में मुख्यतः दो प्रकार कि ध्वनियों की प्रमुखता है।

१. स्वर और २. व्यंजन

५.२.१ स्वर :

स्वर अन्य ध्वनियों को कहते हैं जो बिना किसी अन्य वर्ण की सहायता से उच्चारित किए जाते हैं। स्वतंत्र रूप से बोले जाने वाले वर्ण स्वर कहलाते हैं।

'स्वर वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में वायु अबाध गति (बिना रूकावट) से मुख विवर से बाहर निकलती हैं।'

हिन्दी भाषा में मूल रूप से ग्यारह स्वर होते है।

ग्यारह स्वर के वर्ण : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ आदि.

स्वरों का वर्गीकरण :

स्वरों का वर्गीकरण मुख्य तीन आधारों पर किया जाता है -

(क) जिह्वा के भागों की दृष्टि से

(ख) जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से

(ग) ओठों की आकृति की दृष्टि से

(क) जिह्वा के भागों की दृष्टि से

१) स्वरों का प्रथम वर्गीकरण जिह्वा के भाग की दृष्टि से किया जाता है। इस दृष्टि के तीन वर्ग होते हैं :

१. जिह्वा के अग्रभाग द्वारा निर्मित अग्रस्वर।

जैसे (इ, ई, ए, ऐ)

२. जिह्वा के पश्चभाग द्वारा निर्मित पश्चस्वर।

जैसे (ऊ, ऊ, ओ, औ, आ)

३. जिह्वा के मध्य भाग से निर्मित केन्द्रीयस्वर।

जैसे - (अ)

(ख) जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से

यह वर्गीकरण स्वर-सीमा के भीतर जिह्वा की ऊँचाई की मात्रा पर किया जाता है। स्वरों को इस आधार पर मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया जाता है। किन्तु इस दृष्टि से इससे भी अधिक भागों में स्वरों को विभाजित करने में कोई सैद्धांतिक रोक नहीं हैं। ब्लाक एवं ट्रैगर ने स्वरों को सात भागों में विभाजित किया है। इसको आगे एक तालिका में प्रदर्शित किया जाएगा। यहाँ पर स्वरों को केवल चार ही भागों में विभाजित करके उनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. संवृत २. अर्धसंवृत ३. अर्धविवृत ४. विवृत

१. संवृत - जब जिह्वा और स्वर सीमा के मध्य कम से कम स्थान खाली रहता है तब स्वरों को संवृत स्वर कहते हैं।

(अग्र संवृत - ई, इ तथा पश्चसंवृत - ऊ, उ)

२. **अर्धसंवृत -** जब जिह्वा और स्वर सीमा के मध्य संवृत को अपेक्षा तनिक अधिक स्थान खाली रहता है तब स्वरों को अर्धसंवृत कहते है |

जैसे - (अग्र अर्धसंवृत - ए तथा पश्च अर्धसंवृत - ओ)

३. **अर्धविवृत -** जब जिह्वा और स्वर सीमा के मध्य विवृत की अपेक्षा तनिक कम स्थान खाली रहता है तब स्वरों को अर्धविवृत कहते है |

जैसे - (अग्र अर्धविवृत - ऐ तथा पश्च अर्धविवृत - औ)

४. **विवृत -** जब जिह्वा तथा स्वर-सीमा के मध्य अधिक से अधिक स्थान खाली रहता है तब स्वरों को विवृत कहते है |

जैसे - (पश्च विवृत - आ, अग्र विवृत का हिंदी में अभाव है)

(ग) ओठों की आकृति की दृष्टि से

स्वरों के दो वर्ग किए जाते हैं। स्वरों के उच्चारण में जब ओंठ गोलाकार हो तब स्वरों को वृताकार कहा जाता है। इसके विपरीत जब ओंठ गोलाकार न हो तब उन्हें अवृताकार कहा जाता है। किसी भी स्वर को वृताकार या अवृताकार करके बोला जा सकता है।

जिह्वा के अग्रभाग के आधार पर -

अर्धसंवृत अग्रस्वर - 'ए'

अर्थ विवृत अग्रस्वर - 'ऐ'

जिह्वा के पश्चभाग के आधार पर -

अर्धसंवृत अग्रस्वर - 'ओ'

अर्थ विवृत अग्रस्वर - 'औ'

इसके अतिरिक्त स्वरों के वर्गीकरण में निम्नलिखित शारीरिक अंगों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती हैं।

अनुनासिकता या कोमल तालु की स्थिति :

कोमल तालु और कौवा के विषय में उल्लेख किया गया है कि ये दोनों नासिका विवर को कभी पूर्णतया बन्द कर देते हैं और कभी मध्य में रहते हैं, जिससे वायु मुख और नासिका दोनों मार्गों से निकलती है। इसके आधार पर सभी स्वरों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) अनुनासिक :

जब वायु मुख और नासा दोनों मार्ग से निकलेगी तो वे ध्वनियाँ अनुनासिक हो जायेंगी।

जैसे :अँ, ऑ, इँ, ई आदि.

(ख) निरनुसासिक :

जिनमें नासारंध्र की सहायता नहीं है।

जैसे : मौलिक स्वर -, अ, आ, इ, ई.

मूर्धन्यता :

अग्रस्वर, मध्यस्वर और पश्चस्वर के उच्चारण में जिह्वा के अग्र, मध्य और पश्च भाग कार्य करते हैं। उस स्थिति में सामान्यतः जिह्वानोक, निश्चेष्ट रहता हैं और वह नीचे दाँतों के पीछे पड़ा रहता है। जिह्वा नोक की विशेषता यह है कि वह किसी भी स्थिति में तालु या मूर्धा की ओर मुड सकता है। ऐसी स्थिति में जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उन्हें मुर्धन्य कहते हैं।

इसके लिए स्वर के नीचे एक बिंदू लगा दिया जाता है। स्वर ध्वनियों को दो भागों में बाँटा गया है।

मूर्धन्यकृत और अमूर्धन्यकृत :

'मूर्धन्यकृत ध्वनियाँ अमेरिकी अंग्रेजी भाषा में प्राप्त होती है।'

तनाव और दृढता की स्थिति :

मुख की माँसपेशियों तथा अन्य अवयवों में कभी तनाव की स्थिति होती है, कभी शिथिलता की। तनाव व दृढ़ता की स्थिति को दृढ़ और तनावहीनता को शिथिल कहते हैं। इस दृष्टि से भी स्वरों के दो भेद किए जा सकते हैं।

शिथिल स्वर - अ, इ, उ आदि

दृढ़ स्वर - आ, ई, ऊ आदि

घोष और अघोष स्वरतंत्रियों की स्थिति :

स्वर तंत्रियों की स्थितियों में उल्लेख किया गया है कि स्वरतंत्रियाँ एक रूप में नहीं रहती हैं। वे कभी खुली रहती है। उस अवस्था में अन्दर से आनेवाली वायु बिना किसी घर्षण या कंपन के बाहर निकलती है। ऐसी ध्वनियों को अघोष या श्वास ध्वनियाँ कहते हैं। कभी स्वरतंत्रियों का मुख बन्द रहता है, अन्दर आनेवाली वायु घर्षण के साथ छोटा छिद्र बनाकर निकलती है, इन ध्वनि को घोष या नाद ध्वनि कहा जाता है। इस प्रकार सभी स्वर घोष या अघोष दो भागों में विभक्त हो सकते हैं।

मात्रा :

ध्वनि के उच्चारण में लगनेवाली अवधि को 'मात्रा' कहते हैं। मात्रा के आधार पर स्वरों का स्वरूप निश्चित किया जाता है। इसके तीन प्रकार है।

ह्रस्व	।	लघु	।
दीर्घ	।	गुरू	ऽ
प्लुत			ऽ।

मूल स्वर एवं संयुक्त स्वर :

एक स्थान या अनेक स्थान से उच्चारण की दृष्टि से स्वरों को दो भागों में बाँटा गया है।

(क) मूल स्वर

इनके उच्चारण में भी जीभ किसी एक स्थान पर रहती है।

जैसे -

अ, आ, इ, ई आदि

इन्हें मूलस्वर कहते हैं।

(ख) संयुक्त स्वर

इनके उच्चारण में जीभ एक स्वर के उच्चारण से दूसरे उच्चारण स्थान की ओर जाती है।

जैसे -

ऐ, औ, का, अइ, और

ऐ + औ = अइ

इन्हें संयुक्त या मिश्र स्वर कहते हैं।

५.२.२ व्यंजन

वे वर्ण जिनका उच्चारण बिना स्वर की सहायता के बिना सम्भव नहीं है अर्थात इनको स्वर की सहायता से बोला जाता है, व्यंजन कहलाता है।

व्यंजनों का वर्गीकरण :

व्यंजनों का वर्गीकरण निम्नलिखित भागों में किया गया है।

१. मूल विभाजन या अभ्यांतर प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों के प्रकार

२. प्राण वायु के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण

३. स्वर तंत्रियों के कंपन /घोष के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण

४. उच्चारण के आधार पर व्यंजनों के प्रकार

१. मूल विभाजन या अभ्यांतर प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों के प्रकार

यह विभाजन सर्वप्रथम एवं सबसे प्राचीन है। मूल विभाजन के आधार पर व्यंजनों को ४ भागों में बाँटा गया है।

(क) स्पर्श व्यंजन / उदित व्यंजन / वर्गीय व्यंजन :

वे व्यंजन जिनका उच्चारण करने पर जीभ मूल उच्चारण स्थानों (कंठ, ताल, मूर्धा, दंत, ओष्ठ) को स्पर्श करती है इसलिए ये स्पर्श व्यंजन कहलाते हैं।

यह व्यंजनों के शुरू के ५ वर्ग होते हैं इसीलिए इन्हें वर्गीय व्यंजन भी कहा जाता है। ये व्यंजन जीभ के अलग-अलग उच्चारण स्थानों के टकराने से उत्पन्न हुए हैं, इसीलिए इन्हें उदित व्यंजन भी कहा गया है।

इनकी संख्या २५ है।

वर्ग	व्यंजन
क वर्ग	क, ख, ग, घ, ङ
च वर्ग	च, छ, ज, झ, ञ
ट वर्ग	ट, ठ, ड, ढ, ण
त वर्ग	त, ध, द, ध, न
प वर्ग	प, फ, ब, भ, म

(ख) अन्तस्थ : व्यंजन :

अंत का अर्थ होता है - भीतर या अंदर |

जिन व्यंजनों का उच्चारण करते समय जीभ मुँह के किसी भी भाग को पूरी तरह स्पर्श नहीं करती अर्थात इनका उच्चारण मुँह के भीतर से होता है, वे अंतःस्थ व्यंजन कहलाते है।

इनकी संख्या ४ है - य, र, ल, व

(ग) उष्म व्यंजन :

उष्मा का अर्थ है - गर्मी या गर्माहट |

जिन व्यंजनों का उच्चारण करते समय गर्मी उत्पन्न हो अर्थात इनके उच्चारण में मुख से हवा के रगड़ खाने के कारण उष्मा पैदा हो, उष्म व्यंजन कहलाते हैं।

इनकी संख्या चार (४) है - श, ष, स, ह

(घ) संयुक्त व्यंजन :

जो व्यंजन दो व्यंजनों के मेल से बनते है, संयुक्त व्यंजन कहलाते हैं।

इनकी संख्या चार (४) है - क्ष, त्र, ज्ञ, श्र

क्ष = क् + ष = क्षमा, रक्षा, कक्षा

त्र = त् + र = पत्र, त्रिशूल

ज्ञ = ज् + ञ = ज्ञान, विज्ञान

श्र = श् + र = श्रवण, श्रम

२. प्राण वायु के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण :

व्यंजनों को प्राण वायु के आधार पर भी बांटा गया है। इसके अनुसार व्यंजन दो प्रकार के होते हैं।

(क) महाप्राण :

जिन व्यंजनों का उच्चारण करते समय प्राण वायु अधिक निकले या अधिक प्रयोग हो, महाप्राण कहलाते हैं।

इनकी संख्या १४ है।

५ वर्गों के सम स्थान वाले वर्ण (१०) + उष्म व्यंजन (४)

अर्थात - ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, श, ष, स, ह

सभी उष्म व्यंजन और वर्ग के दूसरे चौथे स्थान के वर्ण ही महाप्राण वर्ण हैं।

(ख) अल्पप्राण :

जिन व्यंजनों का उच्चारण करते समय प्राण महाप्राण की तुलना में कम निकले या कम प्रयोग हो, अल्पप्राण कहलाते हैं। इनकी संख्या १९ है। ५ वर्गों के विषम स्थान वाले वर्ण (१५) + अंतःस्थ व्यंजन (४)।

अर्थात - क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व।

सभी अंतःस्थ व्यंजन और वर्ग के पहले तीसरे, पाँचवे स्थान के वर्ण ही अल्पप्राण वर्ण हैं।

३. स्वर तंत्रियों के कंपन / घोष के आधार पर व्यंजनों के प्रकार :

घोष के आधार पर व्यंजनों के प्रकार स्वर तंत्रियों के कंपन के आधार पर व्यंजनों को दो भागों में बांटा गया है।

(क) घोष या सघोष व्यंजन:

इन व्यंजनों का उच्चारण करते समय स्वर तंत्रियों में अधिक कंपन हो, घोष या सघोष वर्ण कहलाते हैं। इनकी संख्या २० है।

वर्गों के ३, ४, ५ वर्ण (१५) + अंतःस्थ व्यंजन (४) + ह

ख, ग, ङ्, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, य, र, ल, व, ह

सभी अंतःस्थ व्यंजन वर्ण है और वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवे वर्ण घोष वर्ण के अंतर्गत आते हैं।

(ख) अघोष व्यंजन:

इन व्यंजनों का उच्चारण करते समय स्वर तंत्रियों में घोष वर्णों की तुलना में कम कंपन होता है, अघोष वर्ण कहलाते हैं।

इनकी संख्या १४ है।

वर्गों के १, २ वर्ण (१०) + श, ष, स

क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, ष, श, स

श, ष, स वर्ण और वर्गों के पहले, दूसरे वर्ण अघोष वर्ण के अंतर्गत आते हैं।

कुछ व्यंजन एवं उनके अन्य नाम।

१) स्पर्श संघर्षी व्यंजन - च, छ, ज, झ

२) संघर्षी व्यंजन - फ, व, स, श, ह

३) नासिक्य व्यंजन - ङ, न, ण, म, ञ

४) निरानुनासिक व्यंजन - च, क, ट, थ

५) लुंठित या प्रकम्पित व्यंजन - र

६) पाश्विक व्यंजन - ल

७) स्वर यंत्र मुखी या काकल्य व्यंजन - र

८) अर्ध स्वर - य, व

९) द्विगुण व्यंजन / उक्षिप्त व्यंजन - ढ़, ड़

५.३. सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने हिंदी का भाषिक स्वरुप के साथ-साथ हिंदी के स्वर और व्यंजन का वर्गीकरण आदि का अध्ययन किया।

५.४. लघुत्तरीय प्रश्न

१) ध्वनि के उच्चारण में लगनेवाली अवधि को क्या कहते हैं?

२) 'मात्रा' के प्रकार कितने है?

३) हिंदी भाषा में मुल रूप से कितने स्वर है?

४) स्वरों का वर्गीकरण कितने भागों में किया जाता है?

५.५. दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) हिंदी का भाषिक स्वरुप को स्पष्ट करते हुए हिंदी के स्वर और व्यंजन पर प्रकाश डालिए |

२) हिंदी स्वरों और व्यंजनों को स्पष्ट कीजिए।

५.६. संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२) भाषा विज्ञान - रमेश शुक्ल

३) हिंदी भाषा, व्याकरण और रचना - डॉ. अर्जुन तिवारी

४) हिंदी वर्तनी का विकास - अनिता गुप्ता

५) हिंदी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु

❖❖❖❖

६

देवनागरी लिपि एवं हिंदी का मानकीकरण

इकाई की रूपरेखा :

६.० इकाई का उद्देश्य

६.१ प्रस्तावना

६.२ देवनागरी लिपि : नामकरण

६.३ देवनागरी लिपि : उद्भव एवं विकास

६.४ देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

६.५ देवनागरी लिपि का मानक रूप एवं त्रुटियाँ

६.६ सारांश

६.७ अतिलघुत्तरीय प्रश्न

६.८ लघुत्तरीय प्रश्न

६.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

६.१० संदर्भ ग्रंथ

६.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से आपका परिचय होगा -

- 'भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा' के संदर्भ में देवनागरी लिपि से आपका परिचय होगा।
- देवनागरी लिपि के नामकरण, इतिहास और उद्भव की जानकारी प्राप्त होगी।
- देवनागरी लिपि के विकास क्रम से अवगत हो पाएँगे।
- विभिन्न विद्वानों के व्यक्तव्य से अवगत हो पाएँगे ।
- देवनागरी लिपि की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर पाएँगे ।
- देवनागरी लिपि से संबंधित त्रुटियाँ और उसके मानक रूप से परिचित हो पाएँगे ।

६.१ प्रस्तावना

देवनागरी लिपि प्राचीन नागरी लिपि के पश्चिमी रूप से विकसित हुई है | नागरी लिपि को 'नागरी' और 'देवनागरी' इन दो नामों से संबोधित किया जाता है | नागरी लिपि का विकास १० शताब्दी ई. से माना जाता है | प्राचीन अभिलेखों की लिखावट के अध्ययन से ज्ञात होता है की भीमदेव प्रथम (१०२९ ई.) और भीमदेव द्वितीय (१२०० ई.) तथा उदयवर्मन (१२०० ई.) के अभिलेखों के अनुसार प्रयुक्त लिपि वर्तमान हिंदी के बहुत समीप आ गई है |

१८वी शती ई. की नागरी लिपि वर्तमान नागरी के तुल्य पूर्ण विकसित हो गई थी | सिर्फ कुछ मात्राओं में अंतर पाया जाता है |

६.२ देवनागरी लिपि : नामकरण

देवनागरी एक भारतीय लिपि है जिसमें अनेक भारतीय भाषाऐं लिखी जाती हैं। यह बायें से दायें लिखी जाती है। इसकी पहचान एक क्षैतिज रेखा से है जिसे 'शिरोरेखा' कहते हैं।

संस्कृत,	पाली
हिन्दी,	मराठी
कोंकणी,	सिन्धी
काश्मीरी,	हरियाणी
डोंगली,	बुंदेली भाषा
खस,	नेपाली भाषाएँ
तूमांग भाषा,	गढवाली
बोडो,	अंगिका
मगही,	भोजपुरी
नागपुरी,	मैथिली
संताली,	बघेली

राजस्थानी भाषा और कई स्थानीय बोलियाँ भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।

इसके अतिरिक्त कुछ स्थितियों में गुजराती, पंजाबी, विष्णुपुरिया, मणिपुरी, रोमानी और उर्दु भाषाएँ भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। देवनागरी विश्व में सर्वाधिक प्रयुक्त लिपियों में से एक है। यह दक्षिण एशिया की १७५ से अधिक भाषाओं को लिखने के लिए प्रयुक्त हो रही है।

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ
ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ॐ
ऐ	ओ	औ			
तत्	त्वम्	असि			

क	ख	ग	घ	ङ़	च	छ
ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ
ण	त	थ	द	ध	न	प
फ	ब	भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह		

प्राचीन भारतीय लिपियों के अंतर्गत निम्नलिखित तीन लिपियों का अध्ययन किया जाता है-

१) सिंधु घाटी की लिपि

२) ब्राह्मी लिपि

३) खरोष्ठी लिपि

ब्राहमी लिपि के अंतर्गत ३५० ई. के बाद इसकी (ब्राह्मी) दो शैलियाँ हो जाती हैं - उत्तरी और दक्षिणी शैली। उत्तरी शैली से चौथी सदी में गुप्त लिपि का विकास हुआ, जो पूर्वी सदी तक प्रयुक्त होती रही। गुप्त से कुटिल लिपि विकसित हुई जो आठवीं सदी तक प्रयुक्त होती रहीं। इस कुटिल लिपि से नौवीं सदी के लगभग नागरी का प्राचीन रूप जिसे प्राचीन नागरी कहा गया। इसका क्षेत्र उत्तरी भारत है, पर दक्षिण भारत के कुछ भागों में यह मिली है।

दक्षिण भारत में इसका नाम 'नागरी' न होकर 'नन्दिनागरी' है। प्राचीन नागरी से आधुनिक नागरी, गुजराती, महाजनी, कैथी, राजस्थानी, मैथिली, बंगला, असमी आदि लिपियाँ विकसित हुई हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ जो पहले गुप्त लिपि फिर, कुटिल लिपि और अन्तत: १० वीं शताब्दी में देवनागरी लिपि के रूप में विकसित हुई। कुटिल लिपि से प्राचीन नागरी और बाद में आधुनिक देवनागरी का विकास हुआ। प्राचीन नागरी का प्रचार - प्रसार १६ वीं शताब्दी तक पाया जाता है।

ब्राह्मी लिपि - कुटिल लिपि - नागरी लिपि - देवनागरी लिपि है। 'प्राचीन काल में पश्चिमी उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान एवं महाराष्ट्र में इसका प्रचार एवं प्रसार था। मध्य देश की लिपि होने के कारण देवनागरी अत्यंत महत्वपूर्ण लिपि है। इसमें लिखित सभी के सभी प्राचीन लेख सातवीं- आठवीं शताब्दी के हैं। ग्यारहवीं शताब्दी तक यह लिपि पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी और उत्तरी भारत में सर्वत्र इसका बोलबाला था। गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में इसमें ताडपत्र पर लिखे हुए अनेक प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं।'

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भी बताया है कि, 'राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य भारत, विन्ध्य प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में इस काल के लिखे प्राय: समस्त शिलालेख, ताम्रपत्र आदि में नागरी लिपि ही पाई जाती है।'

विद्वानों में 'नागरी' शब्दार्थ में पर्याप्त मतभेद है। देवनागरी लिपि के नागर, नागरी या देवनागरी नाम पड़ने के अनेक कारण बताएँ गए है। संक्षेप में यहाँ विद्वानों के मत प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

- गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा प्रयोग में लाए जाने के कारण इसका नाम नागरी पड़ा।
- नगरों में प्रचलित होने के कारण यह 'नागरी - लिपि' कहलाई।
- कुछ लोगों के अनुसार ललित विस्तार में उल्लेखित नाम 'नाग-लिपि' ही 'नागरी' है, अर्थात् 'नाग' से नागर शब्द का संबंध है।
- तांत्रिक चिह्न 'देवनागर' से समानता के कारण इसे देवनागरी और फिर 'नागरी' कहा गया। इस मत के प्रतिपादक हैं - श्री. आर. श्यामशास्त्री
- दक्षिण भारत में इसका नाम 'नन्दिनागरी' होने के कारण इसका संबंध किसी 'नन्दिसार' नामक राजधानी से जोड़ा गया है।
- डॉ. उदयनारायण तिवारी का मत है कि देवभाषा संस्कृत के लिखने के लिए भी इसका प्रयोग किया गया, अत: उसका नाम देवनागरी पड़ा।
- श्री. आर. श्यामशास्त्री के मत का समर्थन डॉ. ओझाजी ने किया है। 'प्राचीन लिपि माला' पुस्तक में लिखा है - तांत्रिक समय में 'नागरी लिपि' नाम प्रचलित था।

- एक मतानुसार मध्ययुग में स्थापत्य की एक शैली नागरी थी, जिसमें चतुर्भुजी आकृतियाँ होती थी। नागरी लिपि में चतुर्भुजी अक्षरों (प, भ, म) के कारण इसे नागरी कहा गया।
- डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है - 'ये मत कोरे अनुमान पर आधारित है, अत एवं किसी को भी बहुत प्रमाणिक नहीं माना जाता।' उपरोक्त मतों में से डॉ. उदयनारायण तिवारी का मत अधिक समुचित लगता है। फिर भी देवनागरी या 'नागरी' शब्द की व्युत्पत्ति का प्रश्न विद्वानों के सामने आज भी खड़ा है। हम आशा करते है कि आनेवाले दिनों में 'नागरी' शब्द की व्युत्पत्ति का संतोषजनक समाधान होगा।

६.३ देवनागरी लिपि : उद्भव और विकास

देवनागरी लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग गुजरात के राजा जयभट्ट (सातवीं - आठवीं शताब्दी) ने एक शिलालेख में किया है। डॉ. त्रिलोक नाथ सिंह ने 'सुगम भाषा विज्ञान' पुस्तक में लिखा है - 'आठवीं शताब्दी के राष्ट्रकुट नरेशों के राज्य में इस लिपि का प्रचार था। बडौदा के ध्रुवराज के ९ वीं शती के राजकीय आदेशों में इसी लिपि का प्रयोग हुआ है। गुजरात में तो १७ वीं शताब्दी तक इसी का प्रचार था।'

विकासात्मक दृष्टि से देखा जाए तो नागरी के वर्णों में दसवीं शताब्दी से क्रमश: विकास होता रहा है। डॉ. ओझाजी के अनुसार - 'ईस्वी सन् की दसवी शताब्दी उत्तरी भारतवर्ष की नागरी लिपि में कुटिल लिपि की भाँति अ, आ, प, म, य, ष और स के सिर दो अंशों में विभक्त मिलते हैं, परंतु ग्यारहवी शताब्दी से वे दोनों अंश मिलकर सिर की एक लकीर बन जाते हैं और प्रत्येक अक्षर का सिर उतना लंबा रहता है, जितनी की अक्षर की चौड़ाई होती है। ग्यारहवी शताब्दी की नागरी लिपि वर्तमान नागरी बन गई है। ई.स. बारहवीं शताब्दी से लगातार अब तक नागरी लिपि शायद एक ही रूप में चली आ रही हैं।'

वास्तव में ग्यारहवीं शताब्दी में नागरी लिपि का पर्याप्त विकास हो गया था और बारहवीं सदी की लिपि का वर्तमान रूप मिलता है फिर भी 'इ' और 'ध' की आकृति पुरानी है। दसवीं सदी के अनेक वर्ण आधुनिक वर्णों से बहुत अधिक भिन्न है। उदाहरण के लिए 'ऊँ' और 'ण' के रूपों को देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'अ' के आधुनिक रूप 'अ', 'अ' जिस प्रकार एक ही मूल के दो विकसित रूप हैं, आदि अनेक पहलुओंपर दृष्टि डाली जा सकती है।

नागरी लिपि के एक हजार वर्षों के जीवनकाल में प्राय: सभी अक्षरों में न्यूनधिक रूप में परिवर्तन मिलता है। इन परिवर्तनों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इन परिवर्तनों के अतिरिक्त डॉ. भोलानाथ तिवारी ने नागरी लिपि में कुछ महत्वपूर्ण बातों की और दृष्टिपात किया है, जो निम्नांकित है -

- सबसे महत्वपूर्ण बात है फारसी लिपि का प्रभाव। नागरी में नुक्ते या बिंदु का प्रयोग फारसी लिपि का ही प्रभाव है। फारसी लिपि मूलत: बिंदुप्रधान लिपि कही जा सकती है। क्योंकि उसके अनेक वर्ण - चिह्न (जैसे - बे, पे, ते, से, रे, जे, फे, दाल-जाल, तोय-जोय, स्वाद - प्रवाद, ऐन - गैन, सीन - शीन) बिंदु के कारण ही उससे अलग-अलग है। नागरी लिपि में ऐसा कोई अंतर प्राय: नहीं रहा है। हाँ फारसी के प्रभाव ग्रहण करके कुछ

परंपरागत तथा नवागत ध्वनियों के लिए नागरी में भी नुक्ते का प्रयोग होने लगा है। ड - ड, ढ - ढ, क - क, ख - ख, ग - ग, ज - ज, फ - फ आदि नहीं मध्ययुग में कुछ लोग य - प दोनों को एक जैसा व - ब को व लिखने लगे थे। इस भ्रम से बचने के लिए कैथी लिपि में तो नियमित रूप से तथा कभी-कभी नागरी में भी 'य' के लिए तथा 'व' के लिए 'य' का प्रयोग होता रहा है।

- नागरी लिपि पर कुछ प्रभाव मराठी का भी पड़ा है। पुराने प्र, ल आदि के स्थान पर अ, क या भी, भु आदि रूपों में सभी स्वरों के लिए 'अ' का ही कुछ लोगों द्वारा प्रयोग वस्तुत: मराठी का ही प्रभाव है।
- कुछ लोग नागरी लिपि शिरोरेखा के बिना लिखते हैं। यह गुजराती लिपि का प्रभाव है। गुजराती लिपि शिरोरेखा विहीन लिपि है।
- अंग्रेजी पूर्ण प्रचार के बाद, ऑफिस, कॉलेज जैसे शब्दों में 'ऑ' को स्पष्टता लिखने के लिए नागरी लिपि में 'ऑ' का प्रयोग होने लगा है। यह प्रयोग अँग्रेजी के प्रभाव से आया है।
- नागरी लेखन में पहले मुख्यत: केवल एक पाई या दो पाईयों या कभी-कभी वृत का विराम के रूप में प्रयोग करते थे। इधर अंग्रेजी विराम चिह्नों ने हमें प्रभावित किया है और पूर्णविराम को छोड़कर सभी चिह्न हमने अंग्रेजी से लिए हैं। यों कुछ लोग तो पूर्णविराम के स्थान पर भी पाई न देकर अँग्रेजी की तरह बिंदु का भी प्रयोग करते हैं।

६.४ देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

देवनागरी लिपि भारत की प्रमुख लिपि है। भारतीय संविधान ने इसे राजलिपि, राष्ट्रलिपि के पद पर प्रतिष्ठित किया है। संपूर्ण संस्कृत साहित्य की रचना इसी लिपि है। चाहे वह साहित्य उत्तर भारत का हो या दक्षिण भारत का। देवनागरी अनेक आर्य भाषाओं की लिपि है। इसकी लोकप्रियता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। इसी कारण यह माँग बढ़ती जा रही है कि समस्त भारतीय भाषाओं की लिपि देवनागरी ही होनी चाहिए। जब हम देवनागरी लिपि की तुलना संसार की अन्य लिपियों रोमन, अरबी आदि से करते हैं, तो पता चलता है कि उन लिपियों की अपेक्षा देवनागरी में कुछ ऐसे गुण या विशेषताएँ हैं जिसके फलस्वरूप उसे वैज्ञानिक लिपि कहा जाता है।

देवनागरी के गुण एवं विशेषताएँ निम्नलिखित है :

१. देवनागरी एक वैज्ञानिक लिपि है, क्योंकि इसमें संसार की लगभग सभी भाषाओं की ध्वनियों को उच्चारित एवं प्रतिनिधित्व करने वाले लिपि विद्यमान है।

२. प्रत्येक ध्वनि के लिए स्वतंत्र लिपि चिह्न होने चाहिए। एक के लिए चिह्न या अनेक के लिए एक लिपि चिह्न अवैज्ञानिकता की सूचक है। देवनागरी में प्रत्येक ध्वनि के लिए स्वतंत्र एक-एक लिपि चिह्न है जबकि संसार की अन्य लिपियों में यह व्यवस्था नहीं है। जैसे रोमन और उर्दू। अँग्रेजी में C, Q, K तीन लिपि चिह्न है और उच्चारित 'क' एक ही है। उदाहरण Cat = कैट, Kite = काइट, Queen = क्वीन, Chemist = केमिस्ट,

Box = बॉक्स। इस प्रकार रोमन लिपि में 'क' ध्वनि के लिए K, C, CH, CK, Q तो कभी अंशता X (BOX) का प्रयोग होता है। इसी प्रकार 'श' के लिए (SH, SI) 'फ' के लिए (F, PH) आदि, उर्दू लिपि में भी 'स' ध्वनि के लिए तीन लिपि चिह्न है - 'से', 'स्वाद', 'सीन'। इसी प्रकार 'ज' के लिए 'जे' तथा 'जोय' इस प्रकार एक के लिए अनेक या अनेक के लिए एक लिपि चिह्नों का प्रयोग अवैज्ञानिकता के सूचक हैं।

३. देवनागरी लिपि में वर्णों के उच्चारण निश्चित है। इसके विपरित रोमन लिपि में लिखा कुछ जाता है और उसका उच्चारित रूप अलग ही है। जैसे अँग्रेजी में 'पाँच' ध्वनि है। इसका एक शब्द में, उच्चारण 'उ' (Put) होता है तो दूसरे में 'अ' (But) उच्चारण होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ध्वनि विशिष्ट लिपि चिह्न वैज्ञानिकता के सूचक हैं। एक लिपि चिह्न से अनेक ध्वनियों की अभिव्यंजना और एक ध्वनि के लिए अनेक संकेतो का प्रयोग लिपि का बहुत बड़ा दोष है। देवनागरी इस दोष से मुक्त है।

४. देवनागरी में जो बोला जाता है वही लिखा जाता है और जो लिखा जाता है वही बोला जाता है। अर्थात देवनागरी में प्रत्येक वर्ण का उच्चारण होता है। जबकि संसार की अन्य लिपियाँ ऐसी भी है जिनमें बहुत से लिखित वर्णों का उच्चारण ही नहीं किया जाता है। रोमन लिपि में Knowledge का उच्चारण नॉलेज होता है। इसमें KWD तथा अन्य ध्वनियों का उच्चारण ही नहीं होता। इसी प्रकार night, half शब्द हैं।

५. देवनागरी लिपि के अक्षरों का वर्गीकरण वैज्ञानिक रीति से किया जाता है। नागरी वर्णमाला स्वर और व्यंजन के नाम से अभिहित है। यूरोपीय और अरबी आदि लिपियों की भाँति स्वर और व्यंजन को एक साथ नहीं मिला दिया गया है। नागरी में स्वरों का ऱ्हस्व और दीर्घ विभाजन अत्यंत वैज्ञानिक है। व्यंजनों के उच्चारण के अनुसार वर्गीकरण नागरी की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

१) कंठ्य - क, ख, ग, घ, ड

२) तालब - च, छ, ज, झ, ञ

३) मूर्धन्य - ट, ठ, ड, ढ, ण

४) दंत्य - त, थ, द, ध, न

५) ओष्टय - प, फ, ब, भ, म

६. देवनागरी लिपि में वर्ण ध्वनियों के उच्चारण स्थान को ध्यान में रखकर पंक्तिबद्ध बिठाए गए हैं। जैसे ध्वनियाँ कंठ्य से शुरु होकर ओष्ठों तक संपन्न होती हैं।

७. नागरी लिपि में रोमन वर्णों के समान छोटे-बड़े तात्पर्य, कैपिटल - स्माल वर्णों के अलग-अलग रूपों की उलझन नहीं हैं| जैसे - AB / ab आदि।

८. नागरी का वर्तमान स्वरूप गुणों के प्रयोग पर आधारित है, इस कारण इसे दीर्घ परंपरा का बल प्राप्त है।

९. थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर देने पर संसार की कोई भी भाषा इसके माध्यम से सफलतापूर्वक लिखी जा सकती है।

१०. देवनागरी लिपि में स्वर और व्यंजन आदि ध्वनियों का क्रम वैज्ञानिक ढंग से निर्धारित किया गया है। इसके पीछे एक सुनिश्चित सिद्धांत या नियम है, ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का अंतर उनकी आकृति में थोड़ा परिवर्तन करके किया जाता है।

११. देवनागरी लिपि अत्यंत गत्यात्मक और व्यावहारिक लिपि है। इसने अपनी आवश्यकता के अनुसार भाषाओं के ध्वनि चिह्नों को लिया है। पहले इसमें जिह्वा मूल ध्वनियों (क, ख, ग, ज़, फ) नहीं थी परंतु आवश्यकतानुसार बाद में अपनायी गयी है।

१२. अँग्रेजी में एक ध्वनि के लिए दो चिह्नों का योग करना पड़ता है। जैसे - 'ख' के लिए KH घ के लिए GH। इनके उच्चारण भी सुनिश्चित नहीं है। ऐसी अवस्था देवनागरी में लगभग नहीं है।

१३. इस लिपि के वर्ण अत्यंत कलात्मक, सुंदर एवं सुगठित ढंग से लिखे जाते है। इस लिपि में लिखित शब्द अपेक्षाकृत स्थान कम घेरता है। जैसे - देवनागरी लिपि में 'महेश्वर' की अपेक्षा अँग्रेजी में लिखित Maheshwara अधिक स्थान घेरता है।

१४. देवनागरी लिपि सुपाठ्य एवं संदेह रहित है। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि एक संकेत से दूसरे संकेत का भ्रम हो जाए।

१५. देवनागरी लिपि अक्षरात्मक एवं वर्णनात्मक दोनों है।

१६. देवनागरी लिपि वर्ण विभाजन की दृष्टि से वैज्ञानिक है। अघोष और घोष तथा अल्पप्राण और महाप्राण की दृष्टि से इस लिपि की अपनी वैज्ञानिकता है। हर वर्ग के प्रथम, द्वितीय अघोष तथा तृतीय चतुर्थ घोष हैं। इसी प्रकार हर वर्ग की प्रथम, तृतीय अल्पप्राण, तथा द्वितीय, चतुर्थ महाप्राण होते हैं। यह वैज्ञानिक विभाजन अन्य लिपियों में देखने को नहीं मिलता।

१७. कोई भी लिपि टंकन में सरल और कम खर्चीली होनी चाहिए। यह विशेषता या गुण देवनागरी में है।

१८. देवनागरी लिपि देश के बहुत बड़े क्षेत्र में प्रयुक्त होती है। इसका प्रयोग हिमालय से लेकर महाराष्ट्र तक, हरियाणा से बिहार तक होता है।

१९. देवनागरी में छोटे-बड़े वर्ण नहीं होते, प्राय: उनकी आकृती बराबर होती है। रोमन लिपि में कोई वर्ग ऊपर तो कोई नीचे लिखा जाता है।

२०. लिखने में त्वरा भी लिपि का एक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण गुण है। आशुलेखन की दृष्टि से भी लिपि अनुकूल होनी चाहिए। देवनागरी में त्वरा और आशुलेखन की क्षमता है।

२१. देश की समस्त प्रादेशिक भाषाओं से देवनागरी का पारिवारिक संबंध है। डॉ. बाबुराम सक्सेना के शब्दों में भारत की समस्त लिपियों का उद्भव एक सामान्य स्रोत से हुआ है और वह स्त्रोत ब्राह्मी लिपि है।

२२. अनुनासिक ध्वनि के लिए वर्ग का पंचम वर्ण देवनागरी लिपि की अपनी विशेषता है। पाणिनी सूत्र के आधार पर कङ्गन, चञ्चल, दण्ड और कम्पन जैसे शब्दों में 'ग' से पूर्व

'ड़', 'च' से पूर्व 'ञ' 'ड' से पूर्व 'ण', 'त' से पूर्व 'ण' तथा 'प' से पूर्व 'म' की सुनियोजना अत्यंत सुनिश्चित और वैज्ञानिक थी।

२३. देवनागरी लिपि में चिह्न पर्याप्त है। इस लिपि में कुल मिलाकर (स्वर-व्यंजन) ५७ ध्वनियों का प्रयोग होता है। इतने पर्याप्त चिह्नों के बलबूते पर ही, देवनागरी लिपि विश्वभर की लिपियों में एक अद्वितीय स्थान की अधिकारिणी कही जाती है।

साराशंत: देवनागरी लिपि सभी लिपियों की तुलना में अधिक सरल वैज्ञानिक तथा देश की सांस्कृतिक परंपरा के अनुकूल है।

६.५ देवनागरी लिपि : मानक रूप और त्रुटियाँ

देवनागरी लिपि की त्रुटियाँ :

अभी तक हमने देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता और विशेषताओं पर विचार किया। उपरोक्त विवेचन का यह तात्पर्य नहीं है कि देवनागरी सर्वथा दोषमुक्त एवं पूर्ण लिपि है। उसमें कुछ दोष तथा त्रुटियाँ भी हैं। वे निम्नलिखित है -

१. इसकी कुछ ध्वनियों का मूल उच्चारण अब यथावत नहीं रह गया हैं, किंतु उनका प्राचीन चिह्न ज्यों का त्यों व्यवहार में ला रहे हैं। जैसे - 'ऋ'। 'ऋ' का उच्चारण रि होता है, किन्तु ऋषि, ऋतु आदी शब्दों में लिखे वही पुराने चिन्ह जा रहे हैं। लगभग यही स्थिति 'ष' की है। इसका उच्चारण भी 'स' या 'श' हो गया है किंतु लिपि चिह्न यथावत है।

२. अनुनासिक वर्णो : ङ, ञ, का कार्य केवल (?) अनुस्वार चिन्ह से ही चल सकता है। अतएवं लिपि में उनका व्यवहार व्यर्थ ही प्रतीत होता है।

३. संयुक्त व्यंजन 'ज्ञ' का उच्चारण अब 'ग्य' हो गया है। अतएवं इसके अनुसार लिपि चिह्न में भी परिवर्तन होना चाहिए।

४. 'ख' लिपि चिह्न पढ़ने में प्राय: भ्रांति होती है। खाना को रवाना भी पढ़ा जा सकता है।

५. एक ही 'र' ध्वनि के लिए चार लिपि चिह्नों के कारण परेशानी होती है। जैसे - रमेश, कार्य, पत्र, कृष्ण, राष्ट्र, क्रिया आदि शब्दों के आगे, ऊपर, नीचे, बीच में या अंत में 'र' ध्वनि है। एक 'र' के इतने उपवर्ण हैं। अत: अलग-अलग लिपि चिह्न होने चाहिए।

६. इस लिपि की प्रमुख अनियमितता मात्राओं की है। इसमें कोई मात्रा आगे - राम, कोई पहले - कि कोई बाद में - की, कोई ऊपर - में कोई नीचे कु आदि।

७. देवनागरी लिपि में अनेक शब्दों के लेखन में ध्वनियों का प्रयोग होता है और उच्चारण में कुछ और। जैसे धर्म में पाँच ध्वनियाँ हैं - ध्, अ, र, म्, अ किंतु लेखन में केवल तीन रह जाता है। ध्, र, म

८. देवनागरी लिपि में एक वर्ण को दो प्रकार से लिखा जाता है। जैसे - श, श, झ, भ्म, अ, प्र, ल - ल

९. देवनागरी लिपि में शिरोरेशा जहाँ लिखने में बाधक होती है, वहीं इसके अनेक वर्णो के पढ़ने, लिखने की भ्रांति होती है। शिरोरेखा के इधर, उधर हो जाने पर 'भरा', 'मरा' तथा 'घड़ा', 'धड़ा' होने की संभावना है।

देवनागरी लिपि का मानक स्वरूप :

अ) मानकीकृत देवनागरी वर्णमाला :

१) स्वर - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

२) अनुस्वार - अं

३) विसर्ग - अ:

४) व्यंजन–

क,	ख,	ग,	घ,	ङ	कंठय
च,	छ,	ज,	झ,	ञ	तालव्य
ट,	ठ,	ड,	ढ,	ण	मूर्धन्य
त,	थ,	द,	ध,	न	दन्त्य
प,	फ,	ब,	भ,	म	ओष्ठ्य
य,	र,	ल,	व		अन्तस्थ
श,	ष,	स,	ह		उष्म
क्ष,	त्र,	ज्ञ,	श्र		संयुक्त व्यंजन
ङ	ढ़				द्विगुण व्यंजन

नोट :

- देवनागरि लिपि में कुल ५२ वर्ण है।
- देवनागरि लिपि में ११ स्वर है।
- अनुस्वार, विसर्ग को 'आयोगवाह' कहा जाता। इनकी संख्या २ है।
- व्यजंनो की कुल संख्या ३९ है।
- व्यंजनों में से ४ संयुक्त व्यंजन और द्विगुण व्यंजन है।
- ११ स्वर + २ आयोगवाह + ३९ व्यंजन = ५२ वर्ण
- कोई भी वर्ण दो प्रकार से नहीं लिखा जाएगा।

लिपि के विविध स्तरों पर पाई जाने वाली विषमरूपता को दूर कर उसमें एकरूपता लाना ही मानकीकरण है।

लिपि का मानकीकरण करने के लिए निम्न तथ्य महत्वपूर्ण है -

१. एक ध्वनि को अंकित करने के लिए विविध लिपि चिह्नों में से एक को मान्यता दी जाती है। यथा - देवनागरी लिपि में निम्न प्रकार वर्ण द्विविध प्रकार से लिखे जाते है।

अ झ ल ध भ ण

इनमें से प्रथम पंक्ति में लिखे हुए वर्ण ही मान्य है। द्वितीय पंक्ति के वर्ण अमान्य है।

२. ध्वनियों के उच्चारण में भी एकरूपता लानी आवश्यक है। क्षेत्रीय उच्चारण के कारण लोग अलग-अलग ढंग से ही ध्वनि का उच्चारण करते हैं।

यथा : पैसा, पइसा, पाइसा, इनमें से पहला उच्चारण 'पैसा' ही मानक है, शेष दो उच्चारण ठीक नहीं है।

६.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में देवनागरी लिपि एक भारतीय लिपि हैं। इस लिपि के अंतर्गत अनेक भाषाएँ लिखि जाती है। इसमें लिपी का नामकरण, उसका उद्भव एवं विकास आदि को जान सके हैं। इसके साथ ही देवनागरी लिपि की विशेषताओं से छात्र परिचित हुए है। उसका मानक रूप, एवं त्रुटियाँ को विस्तार से जान सके हैं।

६.७ अतिलघुत्तरी प्रश्न

१) प्राचीन भारतीय लिपि के अंतर्गत कितने लिपियों का अध्ययन किया जाता है?

२) दक्षिण भारत में नागरी को क्या कहाँ जाता है?

३) देवनागरी लिपि किस शताब्दी में विकसित हुई?

४) नागरी लिपि में चतुर्भुजी अक्षर है -

५) देवनागरी लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग किस राजा ने किया?

६) देवनागरी लिपि में एक वर्ण को कितने प्रकार से लिखा जाता है?

७) उष्म व्यंजन है -

८) देवनागरी लिपि में अयोगवाह की संख्या है -

९) देवनागरी लिपि में कुल वर्ण है -

१०) भारतीय संविधान में देवनागरी लिपि को किस पद पर प्रतिष्ठित किया है?

६.८ लघुत्तरी प्रश्न

१) देवनागरी लिपि के विकास की चर्चा कीजिएँ।

२) देवनागरी लिपि की विशेषताएँ लिखिए।

३) ब्राह्मी लिपि को स्पष्ट करें?

६.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) देवनागरी लिपि के नामकरण की चर्चा करते हुए उद्भव एवं विकास को विस्तार से स्पष्ट कीजिए।

२) देवनागरी लिपि की विशेषताओं के साथ मानक रूप तथा त्रुटियाँ अपने शब्दों में विश्लेषित करें ?

६.१० संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी भाषा का उद्भव एवं विकास - डॉ. उदय नारायण तिवारी

२) भाषा विज्ञान के अधुनातम आयाम - डॉ. अंबादास देशमुख

३) राजभाषा हिंदी - कैलाशचंद्र भाटिया

४) हिंदी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी

५) सामान्य भाषा विज्ञान - डॉ. बाबुराव सक्सेना

६) नागरी लिपि : रूप और सुधार - मोहन ब्रज

७) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

८) देवनागरी विमर्श - सं. शैलेंद्रकुमार शर्मा

❖❖❖❖

७

संज्ञा में परिवर्तन के आधार

इकाई की रूपरेखा :

७.० इकाई का उद्देश

७.१ प्रस्तावना

७.२ संज्ञा के भेद

७.३ लिंग के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर

७.४ वचन के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर

७.५ कारक के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर

७.६ सारांश

७.७ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

७.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

७.९ संदर्भ पुस्तके

७.० इकाई का उद्देश

- संज्ञा और उसके भेद को जान पाएंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से संज्ञा के विभिन्न रूपांतर का छात्र अध्ययन करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से छात्र लिंग के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से छात्र वचन के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से छात्र कारक के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे।

७.१ प्रस्तावना

संज्ञा का शब्दिक अर्थ है- सम्+ज्ञा अर्थात् सम्यक् ज्ञान कराने वाला। इस प्रकार संज्ञा कि परिभाषा है- किसी भी वस्तु, व्यक्ति, गुण, भाव, स्थिति परिचय कराने वाले शब्द। इसका

दूसरा पर्याय है-नाम। अतः किसी भी व्यक्ति, वस्तु, स्थिति या गुण के नाम को संज्ञा कहते हैं। संज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं जिससे किसी विशेष वस्तु, भाव और जीव के नाम का बोध हो। इस इकाई में संज्ञा के वचन, लिंग और कारक रूपांतर की समस्त जानकारी पाकर छात्र ज्ञान की वृद्धि कर सकेंगे।

७.२ संज्ञा के भेद

संज्ञा के पाँच भेद हैं।

१. **व्यक्तिवाचक संज्ञा-** जिस संज्ञा शब्द से एक ही व्यक्ति, वस्तु या स्थान के नाम का बोध हो उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं। व्यक्तिवाचक संज्ञा, 'विशेष' का बोध कराती है 'सामान्य' का नहीं। जैसे - राम, गंगा, हिमालय, मुंबई आदि।

२. **जातिवाचक संज्ञा -**जिस संज्ञा शब्द से किसी जाति के सम्पूर्ण प्राणियों, वस्तुओं, स्थानों आदि का बोध होता हो उसे 'जातिवाचक संज्ञा' कहते हैं। गाय, आदमी, पुस्तक, नदी आदि शब्द अपनी पूरी जाति का बोध कराते हैं, इसलिए जातिवाचक संज्ञा कहलाते हैं।

३. **भाववाचक संज्ञा -** जिस संज्ञा शब्द से किसी व्यक्ति या वस्तु के गुण-धर्म, शील, स्वभाव, अवस्था, कार्य, भाव आदि का बोध होता है उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे- मिठास, चतुराई, मूर्खता, भोलापन, बुढ़ापा, मित्रता आदि।

४. **समूहवाचक संज्ञा -** जिस संज्ञा शब्द से किसी समूह का बोध होता है, उसे समूह वाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे- भीड़, कक्षा, सेना, सभा, पुलिस, जुलुस, टीम आदि।

५. **द्रव्यवाचक संज्ञा-** जिस संज्ञा शब्द से किसी द्रव या पदार्थ का बोध होता है, उसे द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे - शक्कर दूध, सोना, शरबत, ऊन आदि।

संज्ञा में रूपांतर के तीन आधार होते हैं:-

१. लिंग, २. वचन, ३. कारक

७.३ लिंग के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर

लिंग शब्द का अर्थ है 'निशान या 'चिह्न '। जिस चिह्न से यह विदित हो कि संज्ञा शब्द पुरूष जाति का है या स्त्री जाति का उसे लिंग कहते हैं। अर्थांत् शब्द के जिस रूप से यह ज्ञात हो कि वह पुरुष जाति का है अथवा स्त्री-जाति का उसे लिंग कहते हैं।

हिंदी भाषा में लिंग दो प्रकार के होते हैं-

(क) पुंल्लिग- पुरुषत्व का बोध कराने वाले शब्द पुल्लिंग कहलाते हैं; जैसे- पुरुष, सिंह, द्वार, वृक्ष, बालक, मोर, घर, फूल आदि।

(ख) स्त्रीलिंग- स्त्रीत्व का बोध कराने वाले शब्द स्त्रीलिंग कहलाते हैं, जैसे- स्त्री, मेज, खिड़की, कली, बालिका, बेल, गाय, चिट्ठी आदि।

लिंग परिवर्तन सम्बन्धी नियम :-

१. अ तथा आ को ई करने का नियम:-

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
लड़का	लड़की
नाला	नाली
देव	देवी
मामा	मामी
हिरन	हिरनी

२. अ तथा आ को इया करने से:

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
बूढ़ा	बुढिया
डिब्बा	डिबिया
गुड्डा	गुडिया
बछड़ा	बछिया
बेटा	बिटिया

३. व्यवसायवाचक, जातिवाचक तथा उपनामवाचक शब्दों में इन या आइन जोडने से:

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
धोबी	धोबिन
भंगी	भंगिन
लुहार	लुहारिन
जोगी	जोगिन
माली	मालिन

४. संबंध, जाति तथा उपनामवाचक शब्दों में आनी /आणी जोड़ने से :

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
देवर	देवरानी
क्षत्रिय	क्षत्राणी
नौकर	नौकरानी
चौधरी	चौधरानी
सेठ	सेठानी
पठान	पठानी

५. प्राणीवाचक और जातिवाचक संज्ञाओं में नी जोड़ने से:

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
ऊँट	ऊँटनी
शेर	शेरनी
मोर	मोरनी
सिंह	सिंहनी
भील	भीलनी

६. तत्सम अकारांत शब्दों के अंत में आ जोडकर:

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
बाल	बाला
प्रिय	प्रिया
सुत	सुता
तनय	तनया
पूज्य	पूज्या

७. तत्सम संज्ञा शब्दों में अक का इका करने से:

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
गायक	गायिका
लेखक	लेखिका
सेवक	सेविका
बालक	बालिका
नायक	नायिका

८. तत्सम शब्दों में ता का त्री करने से:

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
दाता	दात्री
धाता	धात्री
कर्ता	कर्त्री

९. तत्सम शब्दों में मान और वान का क्रमशः मती और वती करने से:

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
सत्यवान	सत्यवती
भगवान	भगवती

श्रीमान	श्रीमती
रूपवान	रूपवती
बुद्धिमान	बुद्धिमती

१०. इनी प्रत्यय जोडने से (अ और ई का इनी या इणी होगा):

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
यशस्वी	यशस्विनी
हाथी	हथिनी
मनोहारी	मनोहारिणी
स्वामी	स्वामिनी
हंस	हंसिनी

११. नित्य पुल्लिंग तथा नित्य स्त्रीलिंग शब्दों में क्रमशः मादा और नर शब्द जोड़ने से:

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
भालू	मादा भालू
कोयल	नर कोयल
मगरमच्छ	मादा मगरमच्छ
चील	नर चील
गिलहरी	नर गिलहरी

१२. हिंदी में कुछ पुल्लिग शब्द अपने स्त्रीलिंग शब्द से भिन्न होते हैं:

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
पिता	माता
भाई	बहन
विद्वान	विदुषी
ससुर	सास
बैल	गाय
राजा	रानी

७.४ वचन के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर:

वचन के जिस रूप से उसके एक या अनेक होने का ज्ञान हो, उसे 'वचन' कहते हैं। हिंदी में वचन दो प्रकार के हैं:-

१. एकवचन २. बहुवचन

१. **एकवचन-** शब्द के जिंस रूप से केवल एक ही व्यक्ति या वस्तु का बोध हो, उस एकवचन' कहते हैं; जैसे- लडका, नदी, पुस्तक आदि।

२. **बहुवचन-** शब्द के जिंस रूप से अधिक व्यक्ति या वस्तु का बोध हो, उसे 'बहुवचन' कहते हैं; जैंसे - लड़कियाँ, पुस्तकें, नदियाँ।

बहुवचन बनाने के नियम:-

१. अकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में 'अ' के स्थान पर 'एं' करने से;

एकबचन	**बहुवचन**
बहन	बहनें
रात	रातें
किताब	किताबें
बात	बातें
कलम	कलमें

२. इ या ई स्त्रीलिंग के अंत में इ या ई के स्थान पर इयाँ करने से:

एकबचन	**बहुवचन**
थाली	थालियाँ
देवी	देवियाँ
टोपी	टोपियाँ
नदी	नदियाँ
तिथि	तिथियाँ

३. आ, उ और ऊ अंत वाले स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में आ का एँ करने से:

एकबचन	**बहुवचन**
वस्तु	वस्तुएँ
लता	लताएँ
गाथा	गाथाएँ
सभा	सभाएँ
कविता	कविताएँ

४.आ अंत वाले पुल्लिग शब्दों के अंत में आ के स्थान पर ए कर देने से:

एकबचन	**बहुवचन**
बेटा	बेटे
बच्चा	बच्चे
पंखा	पंखे
घोडा	घोडे
लड़का	लड़के

५. कुछ आकारांत शब्दों के अंत में अनुस्वार लगाने से:

एकबचन	**बहुवचन**
चुहिया	चुहियाँ
डिबिया	डिबियाँ
लुटिया	लुटियाँ
चिड़िया	गुड़ियाँ
गुड़िया	चिड़ियाँ

६. कई शब्दों के अंत में विशेष शब्द जोड़कर भी उनका बहुवचन प्रकट किया जाता हैं-

एकबचन	**बहुवचन**
बालक	बालकगण
देव	देवगण
पक्षी	पक्षीवृंद
पाठक	पाठकवर्ग
विद्वान	विद्वज्जन
अध्यापक	अध्यापकगण

७. कुछ शब्दों के रूप एकवचन तथा बहुवचन में समान पाए जाते हैं:

एकबचन	**बहुवचन**
गिरि	गिरि
घर	घर
छाया	छाया
कल	कल
याचना	याचना

८. आदर या सम्मान के लिए एकवचन, बहुवचन के रूप में प्रुक्त होता है;

जैसे-

१. आप कहाँ जा रहे हैं?

२. महात्मा गांधी हिंसा के विरोधी थे।

७.५ कारक के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर:

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के अन्य शब्दों से जाना जाता है, उसे कारक कहते हैं।

जैसे- मछलियाँ तालाब में तैर रही हैं।

पेड़ से सेब गिरा।

भैया नाना जी के लिए पानी लाए।

कारक चिह्न:-

कारक	**कारक चिह्न**
कर्ता	ने
कर्म	को
करण	से, द्वारा
संप्रदान	के लिए
अपादान	से (अलग होने के लिए)
संबंध	का, की, के, रा, री, रे, ना, नी, नू
अधिकरण	में, पर
संबोधन	हे, रे, अरे

कारक के भेद -

१. कर्ता कारक:

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से क्रिया करने वाले यानी कि कार्य करने वाले का पता चलता है, उसे कर्ता कारक कहते हैं। कर्ता की पहचान ने कारक चिह्न के द्वारा होती है।

जैसे - आदमी ने काम किया

वह अब तक नहीं आई।

जब सकर्मक क्रिया भूतकाल में होती है तब कर्ता के साथ प्रायः 'ने' विभक्ति आती हैं।

जैसे- आदमी ने काम किया।

मेहमानों ने कमाल कर दिया।

उसने निबंध नहीं लिखा।

कर्ता कारक में 'ने' विभक्ति जोड़कर संज्ञाएँ की कारक रचना इस प्रकार होती हैं।

१. पुल्लिंगी संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बैल – अ	बैल ने	बैलों ने
लडका – आ	लडके ने	लडकों ने
कवि – इ	कवि ने	कवियों ने
आदमी – ई	आदमी ने	आदमियों ने
साधु-उ	साधु ने	साधुओं ने
डाकू-ऊ	डाकू ने	डाकुओं ने

२. स्त्रीलिंग संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बहन	बहन ने	बहनौ ने
माला	माला ने	मालाओ ने
तिथि	तिथि ने	तिथियों ने
नदी	नदी ने	नदियों ने
वस्तु	वस्तु ने	वस्तूओं ने
बहू	बहू ने	बहुओं ने
गौ	गौने	गौओं ने

२. कर्म कारक :

वाक्य में क्रिया का फल कर्ता पर न पड़कर जिस अन्य संज्ञा शब्द पर पड़ता है, उसे कर्म कारक कहते हैं। कर्म की पहचान को कारक चिह्न द्वारा होती है।

जैसे- श्वेता ने अतुल को हिंदी पढ़ाई।

माँ ने सब्जी बनाई।

माँ ने बच्चे को उठाया।

कर्म कारक की 'को' विभक्ति जोड़कर संज्ञाएँ की कारक रचना इस प्रकार होती हैं।

१. पुल्लिंगी संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बैल	बैल को	बैलों को
लडका	लडके को	लडकों को
कवि	कवि को	कवियों को

२. स्त्रीलिंग संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बहन	बहन को	बहनों को
माला	माला को	मालाओ को
तिथि	तिथि को	तिथियों को

३. करण कारक:

कर्ता जिस साधन या माध्यम से कार्य करता है, उस साधन या माध्यम को करण कारक कहते हैं। करण कारक पहचान से, या द्वारा चिह्नों द्वारा होती है।

जैसे- पीयूष ने गिलास से पानी पिया।

हम कलम से लिखते हैं।

१. पुल्लिंगी संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बैल	बैल से	बैलों से
लडका	लडके से	लडकों से
कवि	कवि से	कवियों से

२. स्त्रीलिंग संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बहन	बहन से	बहनों से
माला	माला से	मालाओ से
तिथि	तिथि से	तिथियों से

४. सम्प्रदान कारक :

संप्रदान कारक: कर्ता जिसके लिए कार्य करता है या जिसे कुछ देता है, इसका पता जिस शब्द से चलता है, उसे संप्रदान कारक कहते हैं। इसे के लिए तथा को कारक चिह्नों द्वारा पहचाना जाता है। इसका प्रयोग द्विकर्मक क्रिया के लिए किया जा जब वाक्य में दो कर्म होते हैं, तब मुख्य कर्म कारक और गौण कर्म सम्प्रदान कारक में होता है।

जैसे - राजा ने ब्राम्हण को धन दिया।

मुख्य कर्म - धन। गौण कर्म – ब्राम्हण

१. पुल्लिंगी संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बैल	बैल को, के लिए	बैलों को, के लिए
लडका	लडके को, के लिए	लडकों को, के लिए
कवि	कवि को, के लिए	कवियों को, के लिए

२. स्त्रीलिंग संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बहन	बहन को, के लिए	बहनों को, के लिए
माला	माला को, के लिए	मालाओ को, के लिए
तिथि	तिथि को, के लिए	तिथियों को, के लिए

५. अपादान कारक :

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से अलग होने और तुलना करने का पता चलता है, उसे अपादान कारक कहते हैं। इसे से कारक चिह्न द्वारा प्रकट किया जाता है।

जैसे - पहाड़ से नदी निकलती है।

विनय अविनाश से चतुर है।

१. पुल्लिंगी संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बैल	बैल से	बैलों से
लडका	लडके से	लडकों से
कवि	कवि से	कवियों से

२. स्त्रीलिंग संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बहन	बहन से	बहनों से
माला	माला से	मालाओ से
तिथि	तिथि से	तिथियों से

६. संबंध कारक :

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के दूसरे संज्ञा शब्दों से प्रकट हो, उस रूप को संबंधकारक कहते हैं। इन्हें का, के, की, रा, री, रे, ने, नी आदि चिह्नों से प्रकट किया जाता है।

जैसे- मेरी नानी जी खाना बना रही हैं।

रामलाल की बेटी बीमार है।

१. पुल्लिंगी संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बैल	बैल का, के, की	बैलों का, के, की
लडका	लडके का, के, की	लडकों का, के, की
कवि	कवि का, के, की	कवियों का, के, की

२. स्त्रीलिंग संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बहन	बहन का,के,की	बहनों का,के,की
माला	माला का,के,की	मालाओ का,के,की
तिथि	तिथि का,के,की	तिथियों का,के,की

७. अधिकरण कारक :

अधिकरण कारक:- संज्ञा के जिस रूप से क्रिया के आधार, समय और स्थान (यानी कि कार्य के होने का स्थान या समय) आदि का पता चलता है, उसे अधिकरण कारक कहते हैं। इसे में एवं पर चिह्नों द्वारा प्रकट किया जाता है।

जैसे- सिंह वन में रहता।

बंदर पेड़ों पर चढ़ रहे हैं।

१. पुल्लिंगी संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बैल	बैल में, पर	बैलों में, पर
लडका	लडके में, पर	लडकों में, पर
कवि	कवि में, पर	कवियों में, पर

२. स्त्रीलिंग संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बहन	बहन में,पर	बहनों में,पर
माला	माला में,पर	मालाओ में,पर
तिथि	तिथि में,पर	तिथियों में,पर

८.संबोधन कारक:-

जिन संज्ञा शब्दों का प्रयोग किसी के संबोधन (यानी कि किसी को आदरपूर्वक) के रूप में बुलाने या पुकारने के लिए किया जाता है, उन्हें संबोधन कारक कहते हैं।

जैसे- अरे गौरव। कहाँ जा रहे हो?

हे ईश्वर! हम पर दया करो।

१. पुल्लिंगी संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बैल	हे बैल!	हे बैलों!
लडका	हे लडके!	हे लडकों!
कवि	हे कवि!	हे कवियों!

२. स्त्रीलिंग संज्ञाएँ -

संज्ञाएँ	**एकवचन**	**बहुवचन**
बहन	हे बहन!	हे बहनों!
माला	हे माला!	हे मालाओं!
तिथि	हे तिथि!	हे तिथियों!

७.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में संज्ञा किसे कहते है तथा प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय का अध्ययन किया हैं। इकाई में लिंग, वचन और कारक किसे कहते है तथा प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय का अध्ययन किया हैं। इकाई में लिंग, वचन और कारक के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर का अध्ययन किया हैं।

७.७ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

प्र.१ संज्ञा की परिभाषा देते हुए, उसके प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय उदाहरण सहित समझाए।

प्र.२ संज्ञा में रूपान्तर का आधार क्या है? लिंग के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर को उदाहरण सहित समझाए।

प्र.३ वचन के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

प्र.४ कारक किसे कहते हैं? कारक के कितने भेद हैं? उदाहरण सहित लिखिए।

प्र.५ कारक के कारण संज्ञा में होने वाला रूपान्तर को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

७.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र.१ संज्ञा के भेद कितने है?

उ.पांच

प्र.२ लिंग के भेद कितने है?

उ. दो

प्र.३ जिस संज्ञा शब्द से किसी समूह का बोध होता है, कौन-सी संज्ञा कहलाती है?

उ. समूह वाचक संज्ञा कहते हैं।

प्र.४ श्रीमान का स्त्री रूप लिखिए?

उ. श्रीमती।

प्र.५ कारक के भेद कितने है?

उ. आठ भेद

प्र.६ जिस वस्तु के लिए कोई क्रिया की जाती है, उस वस्तु की वाचक संज्ञा या सर्वनाम को क्या कहा जाता है?

उ. सम्प्रदान कारक कहते हैं।

प्र.७ कर्म कारक में कौनसी विभक्ति है?

उ. को।

प्र.८ नदी का बहुवचन क्या होता है?

उ. नदियाँ।

प्र.९ संज्ञा के रूपांतरण के मुख्य आधार क्या-क्या हैं?

उ. लिंग,वचन और कारक।

प्र.१० संज्ञा के रूपांतरण के मुख्य कितने आधार हैं?

उ.तीन।

७.९ संदर्भ पुस्तके

१) हिंदी भाषा की रचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) हिंदी ब्याकरण - कामता प्रसाद गुरु

३) हिंदी व्याकरण प्रकाश- डॉ. महेंद्रकुमार राना

४) व्याकरण दर्शिका - डॉ. मनीषा शर्मा

५) हिंदी व्याकरण एवं रचना -= शशि शर्मा

❖❖❖❖

८

सर्वनाम, विशेषण और क्रिया का रूपान्तर

इकाई की रूपरेखा :

८.० इकाई का उद्देश

८.१ प्रस्तावना

८.२ सर्वनाम का रूपान्तर

८.३ विशेषण का रूपान्तर

८.४ क्रिया का रूपान्तर

८.६ सारांश

८.७ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

८.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

८.९ संदर्भ पुस्तके

८.० इकाई का उद्देश

- इस इकाई के अध्ययन से सर्वनाम के विभिन्न रूपांतर का छात्र अध्ययन करेंगे।
- सर्वनामों में रूपांतर के विविध नियमों की सविस्तार चर्चा करना।
- इस इकाई के अध्ययन से छात्र विशेषण के कारण संज्ञा या सर्वनाम में होने वाला रूपान्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से छात्र क्रिया के कारण संज्ञा या सर्वनाम में होने वाला रूपान्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे।

८.१ प्रस्तावना

सर्वनामो में रूपांतरण या बदलाव के मूल रूप से दो आधार होते हैं - १. वचन, २. कारका कारक रूपांतरण में महत्वपूर्ण भूमिका में होते हैं। इस इकाई में सर्वनामों, विशेषण और क्रिया में होने वाले रूपातरण के विविध नियमों, रूपों का सोदाहरण अध्ययन किया गया है।

८.२ सर्वनाम का रूपान्तर

सर्वनाम शब्दों के रूप, लिंग और वचन के अनुसार भिन्न-भिन्न कारकों में बदल जाते हैं। इसी रूप-परिवर्तन को रूप-रचना कहते हैं।

सर्वनाम शब्दों की रूप-रचना में निम्नाकिंत बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

(क) स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के आधार पर सर्वनामों में परिवर्तन नहीं होता; जैसे-मैं, तू, वह। स्त्रीलिंग और पुल्लिग दोनों में 'मैं' का प्रयोग एक ही तरह से होता है। परन्तु सम्बन्ध कारक में लिंग के कारण परिवर्तन होता है; जैसे मेरा मेरी, हमारा-हमारी, तेरा-तेरी, तुम्हारा तुम्हारी, उसका उसकी।

जैसे-

(i) लड़का दौड़ रहा था, वह गिर गया।

(ii) लड़की दौड़ रही थी, वह गिर गई।

उपर्युक्त दोनों ही वाक्यों में पुल्लिग कर्त्ता लड़का तथा स्त्रीलिंग कर्त्ता लड़की के लिए वह सर्वनाम का ही प्रयोग हुआ है। क्रिया के रूप गिर गया/गिर गई से पता चल रहा है कि कौन-सा 'वह' पुल्लिगवाची है और कौन-सा स्त्रीलिंगवाची।

(ख) सर्वनाम में वचन और कारक के आधार पर परिवर्तन होता है; जैसे मैं, तु, वह, यह ये विभक्ति-रहित, सर्वनाम कर्त्ता कारक के बहुवचन में क्रमशः हम, तुम, वे, और ये के रूप बदल जाते हैं।

(ग) मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष सम्बन्ध कारक के चिह्न का, के, की क्रमशः रा, रे, री के रूप में बदल जाते हैं; जैसे मेरा, मेरे, तेरा, तेरे, तेरी।

(घ) संज्ञा शब्दों के साथ विभक्तियाँ जोड़कर कभी मत लिखिए; जैसे- कृष्ण ने, परन्तु मैं, तू, यह, वह के रूपों में विभक्तियाँ प्रायः जोड़कर लिखी जाती हैं; जैसे-मैंने, तुझे, इसका, उसको।

विभक्ति दोहरी होगी तो पहली जोड़ी जाएगी, दूसरी नहीं; जैसे- मेरे लिए, उसके लिए, तुम्हारे लिए।

सर्वनाम शब्दों के रूप -

पुरुष वाचक उत्तम पुरुष 'मैं' शब्द:-

कारक	**एकवचन**	**बहुवचन**
कर्त्ता	मैं, मैंने	हम, हमने
कर्म	मुझको, मुझे	हमको, हमें
करण	मुझसे, मेरे द्वारा	हमसे, हमारे द्वारा
सम्प्रदान	मुझको, मुझे, मेरे लिए	हमको, हमें, हमारे लिए
अपादान	मुझसे	हमसे
सम्बन्ध	मेरा, मेरी, मेरे	हमारा, हमारी, हमारे
अधिकरण	मुझमें, मुझ पर	हममें, हम पर

पुरुष वाचक मध्यम पुरुष 'तू' शब्द:-

कारक	**एकवचन**	**बहुवचन**
कर्त्ता	तू, तूने	तुम, तुमने
कर्म	तुझको, तुझे	तुमको, तुम्हें
करण	तुझसे, तेरे द्वारा	तुमसे, तुम्हारे द्वारा
सम्प्रदान	तुझको, तुझे, तेरे लिए	तुमको, तुम्हें, तुम्हारे लिए
अपादान	तुझसे	तुमसे
सम्बन्ध	तेरा, तेरी, तेरे	तुम्हारा, तुम्हारी, तुम्हारे
अधिकरण	तुझमें, तुझ पर	तुमसे, तुम पर

अन्य पुरुषवाचक तथा निश्चयवाचक 'यह' शब्द:-

कारक	**एकवचन**	**बहुवचन**
कर्त्ता	यह, इसने	ये, इन्होंने
कर्म	इसको, इसे	इनको, इन्हें
करण	इससे, इसके द्वारा	इनसे, इनके द्वारा
सम्प्रदान	इसको, इसे, इसके लिए	इनको, इन्हें, इनके लिए
अपादान	इससे	इनसे
सम्बन्ध	इसका, इसके, इसकी	इनका, इनके, इनकी
अधिकरण	इसमें, इस पर	इनमें, इन पर

अन्य पुरुषवाचक तथा निश्चयवाचक 'वह' शब्द:-

कारक	**एकवचन**	**बहुवचन**
कर्त्ता	वह, उसने	वे, उन्होंने
कर्म	उसको, उसे	उनको, उन्हें
करण	उससे, उसके द्वारा	उनसे, उनके द्वारा
सम्प्रदान	उसका, उसके, उसकी	उनका, उनके, उनकी
अपादान	उससे	उनसे
सम्बन्ध	उसका, उसके, उसकी	उनका, उनके, उनकी
अधिकरण	उसमें, उस पर	उनमें, उन पर

अनिश्चयवाचक 'कोई' शब्द:-

कर्त्ता	कोई, किसी ने	कोई, किन्हीं ने
कर्म	किसी को	किन्हीं को

आदर सूचक 'आप' मध्यम पुरुष (दोनों वचनों में सामान, नित्य बहुवचन):-

कर्त्ता	आप, आपने	(बहुवचन)
कर्म	आप तो	(बहुवचन)
करण	आपसे, आपके द्वारा	(बहुवचन)
सम्प्रदान	आपके लिए, आप को	
अपादान	आपसे	
सम्बन्ध	आपका, आपके, आपकी	
अधिकरण	आप में, आप पर	

सर्वनाम शब्द का सम्बोधन नहीं होता।

८.३ विशेषण का रूपान्तर

हिंदी में आकारात विशेषणों में ही विकार अथवा परिवर्तन होता है। अन्य विशेषणों में कोई विकार या परिवर्तन नहीं होता, किंतु सभी विशेषणों का प्रयोग संज्ञाओं की तरह होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि विशेषणों में अप्रत्यक्ष रूप से लिंग, वचन और कारक होते हैं। इसीलिए विशेषणों में विकार या परिवर्तन संज्ञा की ही तरह उनके 'अंत' के आधार पर ही होते हैं। ये परिवर्तन विशेषणों में कैसे होते हैं? इसके बारे में आगे के बिंदुओं में विश्लेषण किया गया है।

विशेषणों के भेद -

विशेषणों के मूल रूप से तीन भेद हैं -

क) सार्वनामिक विशेषण, ख) गुणवाचक विशेषण और ग) संख्यावाचक विशेषण

इन सभी के रूपांतर के अलग अलग आधार है। इनमें रूपातर किन नियमों के आधार पर होते है इसका विश्लेषण आगे के बिंदुओं में किया गया है।

(क) सार्वनामिक विशेषण का रूपांतर:-

सार्वनामिक विशेषण जो सर्वनाम अपने सार्वनामिक रूप में ही संज्ञा के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें सार्वनामिक विशेषण कहते है। प्रायः लोग सर्वनाम तथा सार्वनामिक विशेषणों में अंतर नहीं करते। वस्तुतः दोनों रूप-रचना के स्तर पर समान होते हैं केवल वाक्य में प्रयोग के स्तर पर दोनों में अंतर हो जाता है। जो शब्द संज्ञा के स्थान पर वाक्य में प्रयुक्त होते हैं उन्हें सर्वनाम कहते हैं जबकि जो सर्वनाम अपने सार्वनामिक रूप में ही संज्ञा के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते है, उन्हें सार्वनामिक विशेषण कहते हैं।

सार्वनामिक विशेषण चार प्रकार के होते हैं-

(१) संकेतवाचक / निश्चयवाचक सर्वनामिक विशेषण- यह, वह, इस, उस संकेतवाचक या निश्चयवाचक सर्वनामो के उदाहरण हैं। जब ये शब्द सर्वनाम संज्ञा की विशेषता बताते हैं तब निश्चयवाचक विशेषण कहलाते हैं; जैसे-

(i) इस उपन्यास को अवश्य पढ़िये।

(ii) उस कुर्सी को यहाँ ले आइए।

(iii) वह लड़की वहाँ चली गई।

(iv) क्या यह कलम तुम्हारा है।

(२) अनिश्चयवाचक सार्वनामिक विशेषण- जहाँ अनिश्चयवाचक सर्वनाम - कोई, कुछ विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते है; जैसे-

(i) कोई कवि आया है।

(ii) कुछ मित्र मेरे घर आने वाले हैं।

(३) प्रश्नवाचक सार्वनामिक विशेषण- जब कौन, क्या, किस सर्वनाम रूपों का प्रयोग विशेषण के रूप में होता है; जैसे-

(i) कौन-सी साईकिल तुम्हें चाहिए?

(ii) किस अध्यापक से मिलने जाना है?

(iii) इनमें से क्या चीज़ खाओगे?

(iv) कौन जा रहा है?

(४) सम्बन्ध वाचक सार्वनामिक विशेषण- जब सम्बन्ध सर्वनामों जैसे-मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा, इसका, उसका, जिसका, उनका आदि का प्रयोग विशेषण के रूप में किया जाता है; जैसे-

(i) मेरा भाई घर नहीं पहुँचा।

(ii) उनकी कमीज बहुत सुंदर है।

(iii) आपकी माताजी कब आयेंगी?

(iv) तुम्हारा सूट सिल गया है।

(v) जिसका फुटबॉल हो ले ले।

(ख) गुणवाचक विशेषण का रूपांतर:

गुणवाचक विशेषणों में केवल आकारात विशेषण अपने विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलते हैं। आकारात विशेषणों में रूपांतर या बदलाव निम्नलिखित नियमों के अनुसार होते हैं।

१. पुलिंग विशेष्य यदि बहुवचन में हो अथवा विभक्त वा सबंध सूचकांत हो तो विशेषण के अंत में आए 'आ' के स्थान पर 'ए' हो जाता है। जैसे -

(i) छोटा बच्चा-छोटे बच्चे

(ii) ऊँचा घर-ऊँचे घरों में

२. स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ विशेषण के अत में आए 'आ' के स्थान पर 'ई' हो जाती है।

जैसे - छोटी बच्ची, छोटी बच्चियों, छोटी बच्ची को इत्यादि।

३. जमा, उमदा और 'जरा' को छोड़कर अन्य सभी उर्दू भाषा के आकारात विशेषणो में रूपांतर या बदलाव हिंदी आकारात विशेषणो के ही समान होता है। जैसे- जुदा – जुदी, बेचारा – बेचारी।

४. आकारात संबंधसूचक, आकारात विशेषणों के समान बदलते हैं। जैसे –

(i) पतिव्रता ऐसी नारी।

(ii) बाज के से गुण |

(iii) राम ऐसा पति |

५. जब किसी संज्ञा के साथ अनिश्चय के अर्थ में सा' प्रत्यय लगता है, तो इसका रूप उसी संज्ञा के लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तित होता है।

जैसे- मुझे अपना सा लगता है।

मुझे अपनी सी लगती है।

मुझे अपने से लगते हैं।

आकारांत गुणवाचक विशेषणों को छोड़कर शेष अन्य हिंदी गुणवाचक विशेषणों में कोई परिवर्तन या रूपातरण नहीं होता।

जैसे- लाल साड़ी

भारी गठरी

७. संस्कृत गुणवाचक विशेषण प्रायः विशेष्य के लिंग के अनुसार बदलते हैं।

जैसे- पापिन्- पापिनी स्त्री

बुद्धिमत् - बुद्धिमती भार्या

८. कई अंगवाचक तथा दूसरे अन्य अकारांत विशेषणों में प्रायः ई का प्रयोग कर रूपांतरण किया जाता है।

जैसे - सुमुख - सुमुखी

प्रेममय - प्रेममयी

९. उकारांत विशेषणों में रूपांतर या परिवर्तन करते समय अंत्य स्वर में 'च' आ जाता है और 'ई' लगा दिया जाता है।

जैसे - गुरु - गुर्वी

साधु – साध्वी

१०. अकरांत विशेषणों में प्रायः 'आ' लगाकर उसका स्त्रीलिंग रूप बनता है।

जैसे - चतुर - चतुरा

सरल - सरला

विमल - विमला

प्रिय – प्रिया ।

ग) संख्यावाचक विशेषण में रूपांतरण:

जो विशेषण किसी व्यक्ति, प्राणी अथवा वस्तु की (संज्ञा या सर्वनाम) की संख्या से सम्बन्धित विशेषता का बोध कराएँ, उन्हें संख्यावाचक विशेषण कहते हैं; जैसे -

(क) मन्दिर में दो पुजारी रहते हैं।

(ख) कक्षा में पचास छात्र पढ़ते हैं।

(ग) उसने दौड़ में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

(घ) अभिषेक ने दो दर्जन संतरे लिये है।

यहाँ दो, पचास, प्रथम, दो दर्जन विशेषण है क्योकि ये शब्द पुजारी, छात्र, उसने, अभिषेक की संख्या सम्बन्धी विशेषता को प्रकट कर रहे हैं। विशेष्य प्रायः जातिवाचक संज्ञा होते है।

संख्यावाचक विशेषण में रूपांतरण के कुछ नियम दिए गये हैं-

१. संख्यावाचक विशेषणों में क्रमवाचक, आवृत्तिवाचक और आकारांत परिमाणवाचक विशेषणों में रूपांतरण या परिवर्तन होता है।

जैसे - पहला पुत्र

पहली पुत्री

२. अपूर्णांक विशेषणों में केवल 'आधा' शब्द रूपांतरित होता है।

जैसे - आधा कपड़ा

आधे कपड़े

आधी रोट

३. पौना शब्द भी परिवर्तित होता है।

जैसे - पौने मूल्य पर

पौनी कीमत पर

४. संस्कृत के क्रमवाचक विशेषणों में पहले तीन शब्दों में 'आ' और शेष अन्य शब्दों में 'ई' लगाकर स्त्रीलिंग रूप बनाया जाता है।

जैसे – प्रथम- प्रथमा

द्वितीय- द्वितीया

५. 'एक' शब्द का प्रयोग संज्ञा की तरह होने पर उसकी कारक रचना एकवचन में ही होती है। पर, जब उसका प्रयोग 'कुछ लोग' के संदर्भ में होता है, तब उसका रूपांतर बहुवचन में भी होता है।

जैसे - एको आदमी ने विरोध नहीं किया।

एको लोग आगे नहीं आए।

८.४ क्रिया का रूपान्तर

क्रिया में वाच्य, काल, पुरुष, लिंग, वचन काल और अर्थ के कारण रूपान्तर होता है। क्रियाओं में रूपान्तर का बहुत महत्त्व है। क्रियाओं में रूपान्तर (विकार) निम्नलिखित कारणों से होती है।

१. वाच्य - क्रिया के जिस रूप से यह ज्ञात हो कि वाक्य में क्रिया द्वारा किये गये विधान (कही गई बात) का विषय कर्ता अथवा कर्म है, या भाव (धातु का अर्थ) है, उसे वाच्य रहते हैं। वाच्य तीन प्रकार के होते हैं -

(क) कर्तृवाच्य - इसमें कर्त्ता की प्रधानता होती है और क्रिया का सीधा और प्रधान सम्बन्ध कर्त्ता से होता है; जैसे- 'पटेल पत्र लिखता है'। इस वाक्य में लिखता है- यह मुख्य वाक्य है इसलिए यह वाक्य कर्तृवाच्य है।

इसमें क्रिया के लिंग और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं। कर्तृवाच्य में सकर्मक क्रिया के वाक्य भी होते हैं और अकर्मक क्रिया के वाक्य भी; जैसे-

(i) सकर्मक - सहवाग पत्र लिखता है।

ऐश्वर्या पुस्तक पढ़ती है।

(ii) अकर्मक- पठान सोता है।

रानी हंसती है।

(ख) कर्मवाच्य - इसमें कर्म प्रधान होता है अर्थात् कर्म कर्त्ता की स्थिति में होता है और क्रिया का सम्बन्ध सीधा कर्म से होता है। इसके लिंग और वचन भी कर्म के अनुसार ही होते हैं; जैसे- श्रीसंत से पत्र लिखा जाता है। इस वाक्य में 'लिखा जाता है' क्रिया क्रा मुख्य सम्बन्ध 'पत्र' कर्म से है। इसलिए यह वाक्य कर्मवाच्य है।

कर्मवाच्य में वाक्य केवल सकर्मक क्रिया के ही होते हैं, अकर्मक क्रिया के नहीं।

जैसे - द्रविड़ द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है।

कार्तिक से पत्र लिखा गया।

कर्त्ता ज्ञात न होने पर सरकारी सूचनाओं में, वैज्ञानिक या शास्त्रीय विवेचनों में तथा सभा आदि की रिपोर्ट में कर्मवाच्य का प्रयोग होता है।

(ग) भाव वाच्य - इस क्रिया में भाव (धातु के अर्थ) की ही प्रधानता होती है, कर्त्ता या कर्म की नहीं; और यह अकर्मक धातुओं में ही होता है। इसमें क्रिया सदा एकवचन, पुल्लिंग और अन्य पुरुष में रहती है। इसका अधिकतर प्रयोग निषेधार्थक वाक्यों में होता है; जैसे- 'सुना नहीं जाता। देखा नहीं जाता' इसमें केवल अकर्मक क्रिया के वाक्य ही हो सकते हैं सकर्मक क्रिया के नहीं।

भाववाच्य में क्योंकि क्रिया अकर्मक होती है, इसलिए कर्म नहीं होता। कर्म न होने के कारण क्रिया के भाव को कर्त्ता बना लिया जाता है। प्रधान कर्त्ता के सामने 'से' लगा दिया जाता है; जैसे- लड़का तैरता है- लड़के से तैरा जाता है।

काल के कारण रुपान्तर - क्रिया के उस रूपान्तर को काल कहते हैं जिससे क्रिया के घटित होने (व्यापार का) के समय, पूर्ण अथवा अपूर्ण व्यवस्था बोध होता है। काल के तीन भेद है -

(१) वर्तमानकाल, (२) भविष्य काल और (३) भूतकाल

काल के और भी तीन उपभेद हैं :- (१) सामान्य, (२) अपूर्ण और (३) पूर्ण

रूपान्तर	वर्तमानकाल	भूतकाल	भविष्यकाल
सामान्य	वह जाता है	वह गया	वह जाएगा
अपूर्ण	वह जा रहा है	वह जा रहा था	वह जा रहा होगा
पूर्ण	वह गया है	वह गया था	-------------

क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष रुपान्तर -

१. लिंग- संज्ञा की तरह क्रिया में भी दो लिंग होते हैं- पुल्लिंग और स्त्रीलिंग।

जैसे- घोड़ा दौड़ता है। (पुंल्लिग)

घोड़ी दौड़ती है। (स्त्रीलिंग)

२. वचन- संज्ञा के समान क्रिया में भी दो वचन होते हैं- एकवचन और बहुवचन

जैसे- बालक हँसता है। (एकवचन)

कई बालक हँसते हैं। (बहुवचन)

३. पुरुष- क्रिया के तीन पुरुष होते हैं- उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष।

(क) उत्तम पुरुष- 'मैं' और 'हम' के साथ आने वाली क्रिया को 'उत्तम पुरुष' की क्रिया कहते हैं।

(ख) मध्यम पुरुष- 'तू' और 'तुम' के साथ आने वाली क्रिया को 'मध्यम पुरुष' की क्रिया कहते हैं।

(ग) अन्य पुरुष- अन्य सभी सर्वनामों तथा संज्ञाओं के साथ आने वाली क्रिया 'अन्य पुरुष' होती है।

क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष में निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाता है:-

(१) यदि 'ने' प्रत्यय युक्त, कर्त्ता न हो और कर्म के साथ उसका प्रत्यय 'को' भी न लगा हो तो क्रिया के वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार होते हैं; जैसे-लक्ष्मण पुस्तक पढ़ता है।

(२) यदि कर्त्ता ने प्रत्यय युक्त हो और कर्म के साथ उसका प्रत्यय 'को' न लगा हो तो क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार होते हैं; जैसे- लक्ष्मण ने पुस्तकें पढ़ी।

(३) जब कर्ता और कर्म; दोनों प्रत्यय युक्त होते हैं, तो क्रिया सदा अन्य पुरुष, एकवचन पुल्लिग होती है।

जैसे - लक्ष्मण ने पुस्तक को पढ़ा।

८.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में सर्वनाम, विशेषण और क्रिया किसे कहते है तथा प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय का अध्ययन किया हैं । इकाई में सर्वनाम, विशेषण और क्रिया में होने वाला रूपान्तर का अध्ययन किया हैं । इकाई में वाच्य किसे कहते है तथा प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय का अध्ययन किया हैं ।

८.७ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

प्र.१ वाच्य की परिभाषा देते हुए, उसके प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय उदाहरण सहित समझाए।

प्र.२ विशेषण में रूपान्तर का आधार क्या है? विशेषण रूपान्तर को उदाहरण सहित समझाए।

प्र.३ सर्वनाम रूपान्तर को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

प्र.४ क्रिया में रूपान्तर का आधार क्या है? क्रिया रूपान्तर को उदाहरण सहित समझाए।

प्र.५ सर्वनामों की कारक रचना को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए?

८.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र.१ सर्वनामों में रूपांतरण के मूल रूप से कितने आधार होते हैं?

उ. वचन और कारक ये दो आधार होते हैं।

प्र.२ मूलरूप से विशेषण के भेद कितने है?

उ. तीन

प्र.३ काल के भेद कितने है?

उ. तीन

प्र.४ वाच्य के भेद कितने है?

उ. तीन।

प्र.५ 'मैं' और 'हम' के साथ आने वाली क्रिया को क्या कहते हैं।?

उ. उत्तम पुरुष।

प्र.६ किस वाच्य में लिंग और वचन भी कर्म के अनुसार ही होते हैं?

उ. कर्मवाच्य।

प्र.७ किस वाच्य में क्रिया सदा एकवचन, पुल्लिंग और अन्य पुरुष में रहती है।?

उ. भाव वाच्य में।

प्र.८ जो विशेषण किसी व्यक्ति, प्राणी अथवा वस्तु की (संज्ञा या सर्वनाम) की संख्या से सम्बन्धित विशेषता का बोध कराएँ, उन्हें कौन-सा विशेषण कहते हैं?

उ. संख्यावाचक विशेषण।

प्र.९ क्रिया के रूपांतरण के मुख्य आधार क्या-क्या हैं?

उ. वाच्य, पुरुष, लिंग, वचन और काल।

प्र.१० पुरुषवाचक सर्वनाम के कितने भेद हैं?

उ. तीन।

८.९ संदर्भ पुस्तके

१) हिंदी भाषा की रचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) हिंदी ब्याकरण - कामता प्रसाद गुरु

३) हिंदी व्याकरण प्रकाश- डॉ. महेंद्रकुमार राना

४) व्याकरण दर्शिका - डॉ. मनीषा शर्मा

५) हिंदी व्याकरण एवं रचना - शशि शर्मा

❖❖❖❖

९

उपसर्ग, प्रत्यय और समास

इकाई की रूपरेखा :

९.० इकाई का उद्देश

९.१ प्रस्तावना

९.२ उपसर्ग अर्थ, स्वरूप और प्रकार

९.३ प्रत्यय अर्थ, स्वरूप और प्रकार

९.४ समास अर्थ, स्वरूप

९.५ समास के प्रमुख भेद

९.६ संधि और समास में अंतर

९.७ सारांश

९.८ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

९.९ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

९.१० संदर्भ पुस्तके

९.० इकाई का उद्देश

इस इकाई के माध्यम से छात्र निम्नलिखित बिंदुओं का अध्ययन करेंगे।

- उपसर्ग और प्रत्यय के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- उपसर्ग और प्रत्यय के प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- समास तथा समस्तपद के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- छात्र समास विग्रह करना सीख सकेंगे।
- छात्र समास के प्रमुख भेदों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- छात्र विभिन्न समासों के अंतर को समझकर उनके अलग-अलग रूपों को जान सकेंगे।
- साथ ही छात्र संधि और समाज के अंतर को भी अच्छे प्रकार से समझ सकेंगे।

९.१ प्रस्तावना

हिंदी की रूप रचना के अन्तर्गत हम उपसर्ग, प्रत्यय और समास के बारे में पढ़ते हैं। संसार में प्रत्येक वस्तु में निरन्तर बदलाव और विकास होता रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक भाषा में भी नये-नये शब्द बनाए जाने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती हैं, जिसे 'शब्द- रचना' या 'शब्द-निर्माण' प्रक्रिया कहते हैं। व्युत्पत्ति के आधार पर मुख्य रूप से शब्द के दो मूल रूप होते हैं,

रूढ़ और यौगिक। रूढ़ शब्द किसी के मेल से नहीं बनते हैं; ये स्वतंत्र होते हैं, लेकिन यौगिक शब्दों की रचना रूढ़ शब्द के आदि व अंत में जुड़ने वाले शब्दांशों से होती है। ये शब्दांश रूढ शब्द से मिलकर इसके अर्थ में परिवतन ला देते हैं। हिंदी में यौगिक शब्द तीन प्रकार से बनते हैं- उपसर्ग से, प्रत्यय से तथा समास से। इस इकाई में उपसर्ग, प्रत्यय और समास की समस्त जानकारी पाकर छात्र ज्ञान की वृद्धि कर सकेंगे।

९.२ उपसर्ग अर्थ, स्वरूप और प्रकार

उपसर्ग-

शब्दों के आदि में जुड़कर शब्दों के अर्थ में विशेषता लाने वाले शब्दांश 'उपसर्ग कहलाते हैं। इन उपसर्गों का अलग से प्रयोग नहीं किया जा सकता अर्थात स्वतंत्र रूप में इनका कोई विशेष महत्व नहीं होता हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उपसर्ग भाषा के सार्थक लघुतम खंड है जो शब्द के आरंभ में लगाकर नए-नए शब्दों का निर्माण करते हैं। अथवा जो 'शब्दांश' शब्द के आदि में जुडकर उसके अर्थ में विशेषता उत्पन कर देते हैं या उसके अर्थ को सर्वथा बदल देते हैं, वे 'उपसर्ग' कहलाते हैं। जैसे:- जय का अर्थ है- 'जीत' यदि उसके आदि में 'परा' उपसर्ग जोड़ दें तो 'पराजय' शब्द बन उसका अर्थ हो जाता है 'हार' जो मूल शब्द 'जय' के आदि से सर्वथा विपरीत है। कई बार एक शब्द में एक अधिक उपसर्ग भी लगते है; जैसे- सुविधान में सु' और 'वि' दो उपसर्ग लगे हैं। इसी प्रकार सुव्यवहार में सु+वि+अव+हार शब्द में तीन उपसर्ग लगे हैं।

उपसर्ग के प्रकार:-

हिंदी में मुख्य रूप से संस्कृत तत्सम शब्द पाए जाते हैं। इसके अलावा हिंदी तथा उर्दू तत्सम शब्दों का भी प्रयोग हाता है। इस तरह हिंदी में तीन प्रकार के उपसर्ग प्रयुक्त होते हैं- संस्कृत, हिंदी और उर्दू के उपसर्ग।

संस्कृत के उपसर्ग

उपसर्ग	**अर्थ**	**शब्द रूप**
अ	(नहीं, अभाव, हीन, विपरीत)	अखंड, अनाथ, अथाह अधर्म, अदृश्य, अडिग, अचल, अलौकिक।
आ	(तक, समेत, उलटा)	आजीवन, आमरण
अन	(नहीं, अभाव)	अनाचार, अनपढ़, अनादि, अनमोल, अनेक, अनावश्यक, अनिच्छा, अनुपस्थिति।
अधि	(ऊपर, समीप, बडा)	अधिकरण, अधिकार, अधिपति, अधिनायक।
अधि	(अधिक, ऊपर)	अतिशय, अतिरिक्त, अतिक्रमण, अतिचार, अत्यधिक।
अनु	(पीछे, समान)	अनुकरण, अनुगामी, अनुकंपा, अनुशीलन, अनुराग,अनु,अनुजा।
अभि	(तरफ, सामने, समीप)	अभियोग, अभिनेता, अभिमान, अभिनव, अभिमुख।

अप	(बुरा, हीन, अभाव, विपरीत)	अपव्यय, अपकीर्ति, अपमान अपयश, अपवाद, अपशब्द।
अव	(बुरा, नीचा, हीन)	अवगुण, अवनति, अवशेष, अवनत, अवसान।
आ	(तक, पूर्ण)	आगमन, आमरण, आजीवन, आग्रह, आकृति, आदान, आचरण आकर्षण।
अप	(समीप, छोटा, गौण)	उपमा, उपनिवेश, उपकरण, उपचार, उपभेद, उपनाम, उपसहार।
उत्	(ऊँचा, श्रेष्ठ)	उत्कर्ष, उत्थान, उत्पत्ति, उत्तम, उत्कंठा, उत्पन्न।
कु	(बुरा, हीन)	कुरूप, कुकर्म, कुमंत्रणा, कुचाल।
चिर	(सदैव, बहुत)	चिरकाल, चिरायु, चिरंतन।
तत्	(उसके जैसा)	तत्काल, तत्पर, तत्पशचात्।
दुर्	(बुरा, कठिन)	दुराचार, दुरवस्था, दुर्गति, दुर्गुण, दुर्बल, दुर्जन, दुर्भाग्य, दुर्गम।
नि	(निषेध, बाहर, भीतर, अभाव)	निषेध, निकृष्ट, निरूपण, निवास, नियुक्त, निदान, निवारण।
निर्	(निषेध, रहित, बाहर)	निर्भय, निर्वासन, निर्दोष, निर्वाह, निराश, निर्जीव, निरपराध।
परा	(सीमा से अधिक, उलटा)	पराजय, पराक्रम, पराधीन, पराकाष्ठा, परामर्श।
परि	(आसपास, चारों ओर, पूर्ण)	परिकल्पना, परिणाम, परिचर्या, परिच्छेद, परिवेश, परिक्रमा।
प्र	(अधिक, आगे, ऊपर)	प्रगति,प्रक्रिया, प्रवाह, प्रयन्त, प्रतिष्ठा, प्रबल, प्रहार, प्रयोग।
प्रति	(ओर, विरुद्ध, सामने, प्रत्येक)	प्रतिहिंसा, प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिनिधि, प्रतिवादी, प्रतिध्वनि।
वि	(विशेष, उलटा, विशेषता)	वियोग, विभाग, विज्ञान, विमुख, विधवा, विनम्र, विनत।
सम्	(संयोग, अच्छा, पूर्णता)	संपत्ति, सम्मान, सम्मेलन संपूर्ण, सम्मुख, संभव, संतोष।
स	(साथ)	सफल, सरल, सरस, सजीव, सपरिवार, सक्रिय।
सु	(अच्छा, अधिक, सहज)	सुपुत्र, सुगम, सुमन, सुलभ, सुदूर, सुकन्या, सुकुमार, सुशिक्षित।
स्व	(अपना)	स्वराज्य, स्वतंत्र, स्वछन्द, स्वभाव।

हिंदी के उपसर्ग

उपसर्ग	अर्थ	शब्द रूप
अ, अन	(अभाव, निषेध)	अचेत, अनमोल, अनबन
अध	(आधा)	अधजला, अधमरा, अधपका, अधखिला, अधखाया।
औ, अव	(बुरा, नीचा, हीन)	अवगुण, औघट, अवरोध।
उ	(अभाव, रहित)	उत्ऋण, उजड़ा, उनींदा।
कु	(बुरा, बुराई, निचला)	कुपात्र, कुख्यात, कुचाल, कुकर्म, कुमागं, कुअवसर।
दु	(बुरा, हीन)	दुबला, दुसह, दुकाल, दुसाध्य, दुर्जन, दुर्गम।
बिन	(निषेध के बिना)	बिनदेखा, बिनब्याहा, बिनजाना, बिनबोया, बिनखाया।
भर	(पूरा, ठीक)	भरपूर, भरमार, भरपेट।
नि	(रहित)	निडर, निहत्था, निठुर।
स, सु	(अच्छा, उत्तम)	सपूत, सरल, सजग सचेत, सरस, सुगम, सुकन्या, सुफल।

उर्दू के उपसर्ग

उपसर्ग	अर्थ	शब्द रूप
कम	(थाड़ा)	कमसिन, कमज़ोर, कमबख्त, कमउम्र।
ना	(नहीं, अभाव)	नापसंद, नासमझ, नालायक, नाजायज, नाबालिग, नामुमकिन।
बद	(बुरा)	बदकिस्मत, बदचलन, बदतमीज, बदनाम, बदसूरत।
खुश	(प्रसन्न)	खुशकिस्मत, खुशहाल, खुशख़बरी, खुशनसीब, खुशबू।
बे	(बिना)	बेकसूर, बेरहम, बेईमान, बेनकाब, बेचारा, बेइज्ज़त।
ला	(बिना)	लापरवाह, लाइलाज, लावारिस, लाजवाब, लाचार।
हर	(प्रत्येक)	हररोज, हरपल, हरसाल, हरदिन।
हम	(समान)	हमशक्ल, हमदर्द, हमराह, हमराज़, हमसफ़र, हमवतन, हमदर्द।
ना	(अभाव)	नालायक, नापसन्द, नासमझ।
गैर	(बिना)	गैर सरकारी, गैर हाजिर।

शब्दों के आधार पर उपसर्ग के प्रकार भी किये जा सकते हैं। जो निम्न प्रकार हैं तथा ये संस्कृत, हिंदी और उर्दू जैसे ही है।

१.तत्सम (कर्म) उपसर्ग- संस्कृत में बाइस उपसर्ग हैं। इनके उदाहरण निम्निलिखित हैं:-

उपसर्ग	**अर्थ**	**शब्द रूप**
अति	(अधिक)	अतिशय, अत्यधिक
अव	(बुरा, हीन)	अवसान, अवसर, अवकाश
उप	(निकट)	उपवन, उपनाम, उपसर्ग

२. तद्भव उपसर्ग- ये मूलतः संस्कृत के (तत्सम) उपसर्गों से ही विकसित हुए हैं।

उपसर्ग	**अर्थ**	**शब्द रूप**
उन	(कम)	उनचास, उनसठ, उनतालीस
पर	(दूसरी पीढ़ी का)	पर दादा, परपोता, परनाना
चौ	(चार)	चौपाई, चौपाया, चौराहा।

३. आगत (विदेशी) उपसर्ग- जो उपसर्ग विदेशी भाषाओँ से हिंदी में गए हैं।

उपसर्ग	**अर्थ**	**शब्द रूप**
ब	(के साथ, से)	बखूबी, बगैर, बनाम।
बे	(बिना)	बेअदब, बेरहम, बेचैन, बेघर।
हम	(आपस में, साथ)	हमदम, हमराह, हमनाम।
दर	(में)	दरगुजर, दरअसल।
सर	(मुख्य)	सरपंच, सरताज।

शब्द निर्माण और उपसर्ग-

शब्द निर्माण और उपसर्ग- शब्द निर्माण में उपसर्गो को प्रयोंग करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये।

१. प्रायः जिस प्रकार का शब्द है, उसी प्रकार का उपसर्ग उस शब्द के साथ लगता है, अर्थात् तत्सम शब्द के साथ तत्सम उपसर्ग, तद्भव शब्द के साथ तद्भव उपसर्ग तथा विदेशी शब्द के साथ विदेशी उपसर्ग।

२. कभी-कभी साहित्यकार नये-नये प्रयोंग करते हैं तब भिन्न स्रोत के उपसर्ग भिन्न स्रोत के शब्दों के साथ भी प्रयुक्त हो जाते हैं; जैसे- बेजोड, अथाह आदि।

३. संस्कृत वे निषेधवाची 'अन्' उपसर्ग का रूप हिदी में अन के रूप परिवर्तित हो जाता है; जैसे- अनदेखा, अनकहा।

४. तत्सम उपसर्ग में कुछ उपसर्ग ऐसे भी हैं जिनके एक से रूप भी मिलते हैं। जेसे- दूर, दुस्, दुष् आदि।

५. एक उपसर्ग एक से अधिक अर्थों में भी प्रयुक्त हो सकता है।

९.३ प्रत्यय अर्थ, स्वरूप और प्रकार

प्रत्यय- जो शब्दांश शब्दों के अन्त में जुड़कर उनके अर्थ को बदल देते हैं, वे प्रत्यय' कहलाते हैं। अथवा भाषा के वे लघुतम सार्थक खंड जो शब्द के अंत जुडकर नये-नये शब्दों का निर्मांण करते हैं' प्रत्यय' कहे जाते हैं। जैसे- बुढापा, लडकपन, कठोरता, बलहीन - इनमें 'पा, पन, ता, हीन- ये प्रत्यय हैं।

प्रत्यय के प्रकार:-

प्रत्यय तीन प्रकार के होते है:-

१. **क्रिया प्रत्यय -** धातु के अन्त में जिन प्रत्ययों के लगाने से क्रियाएँ बनती हैं, वे 'क्रिया प्रत्यय कहलाते हैं; जैसे- गाया। यहाँ 'गा' धातु के अन्त में या क्रिया प्रत्यय लगा है। गाता है, गायेगा, गाओ, इत्यादि में लगता है, येगा, भी क्रिया-प्रत्यय है।

२. **कृत्प्रत्यय -** धातुओं के अन्त में जिन प्रत्ययों के लगाने से संज्ञा, विशेषण आदि शब्द बन जाते हैं, वे कृत्प्रत्यय' कहलाते हैं। कृत्प्रत्यय पाँच प्रकार के हैं-

(क) कर्तृवाचक - ये प्रत्यय हैं जिनसे क्रिया के करने वाले का बोध होता है; जैसे-वाला, सार आदि।

(ब) कर्मवाचक - ये वे प्रत्यय हैं जिनसे कर्म का बोध होता है; जैसे- ना, नी आदि

(ग) करणवाचक - ये वे प्रत्यय हैं जिनसे भाव (क्रिया के साधन) का बोध होता है; जैसे- आ, ई, ऊ आदि।

(घ) भाववाचक - ये वे प्रत्यय हैं जिनमें भाव (क्रिया) के व्यापार का बोध होता हैं; जैसे- आव, आई, आन, आहट, आवा आदि।

(ङ) क्रिया वाचक - ये वे प्रत्यय हैं जिनसे क्रियाओं के समान ही भूतकाल या वर्तमान काल के वाचक विशेषण या अव्यय बनते हैं। मूलधातु के साथ 'ता' लगाकर उसके बाद 'हुआ' लगाने से वर्तमान काल का विशेषण बनता है; जैसे (वर्तमान काल) भागता हुआ घोडा, सोया हुआ कुत्ता। कभी-कमी 'हुआ' नहीं भी लगता ; जैसे- मरा शेर। कर्तृवाचक प्रत्ययों में संज्ञा और विशेषण दोनों बनते हैं। परन्तु कर्मवाचक करणवाचक, भाववाचक प्रत्ययों से केवल संज्ञाऐ बनती हैं। क्रिया-घोतक प्रत्ययों से विशेषण तथा अव्यय बनते हैं।

३. **तद्धित प्रत्यय -** धातुओं को छोड़कर अन्य शब्दों के अन्त में लगने वाले प्रत्यय तद्धित प्रत्यय कहलाते हैं। कृत्प्रत्यय धातुओं के अन्त में लगते हैं, पर तद्धत प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम और मो विशेषण शब्दों के अन्त में लगते हैं। कुछ प्रमुख तद्धित प्रत्ययों के उदाहरण निम्नलिखित है-

(क) कर्तवाचक प्रत्यय - करने वाले, बनाने वाले, बेचने वाले; जैसे- इया, एरा, गर, गया

गार, ची, हारा आदि। उदाहरण - सुनार, लुहार, घरवाला, कारीगर आदि।

(ख) भाववाचक प्रत्यय - आ, आई, आया, आस, डा, ता, नी, आदि। जैसे-बुलावा, बुराई, बुढ़ाया, सर्दी, रंगत, लड़कपन। अन्य उदाहरण इस प्रकार के हैं- गौरव, महिमा, प्रभुता, माघुर्य आदि।

(ग) **सम्बन्धवाचक प्रत्यय -** आल, जा, एरा; जैसे- ससुराल, भतीजा, ममेरा आदि।

(घ) ऊन (लघुता) वाचक प्रत्यय - आ, इया, री,डी,आदिःजसे-कोठारी, पगड़ी इत्यादि।

(ङ) पूर्णार्थक प्रत्यय - ला, रा, था, ता, वो; जैसे- पहला, दूसरा, पाँचवां।

(च) सादृश्यवाचक प्रत्यय - सा, हरा, हला; जैसे- काला-सा, रुपहरा, सुनहरा इत्यादि।

(छ) गुणवाचक प्रत्यय - आ, इत,ईय, ई, ईला, ऐला, लु, वन्त, बान आरि प्रत्यय हैं। जैसे- सूखा, आनन्दित, अनुकरणीय, धनी, दयालु, गुणवाचक प्रत्यय हैं।

(ज) स्थानवाचक प्रत्यय - ई, इया, वाला, बाल इत्यादि प्रत्यय हैं। जैसे- पंजाबी, मद्रासी, मुम्बई वाला, दिल्ली वाला।

शब्द निर्माण और प्रत्यय- शब्द निर्मांण में प्रत्यय लगाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए-

(क) मूल शब्द में एक बार में केवल एक ही प्रत्य जोड़ा जाना चाहिए। उदाहरण - स्वतंत्र से स्वातंत्र्य तो बन सकता है पर दूसरा 'ता' नहीं जोड़ा जा सकता; जैसे- 'स्वातंत्र्यता' शब्द गलत है।

पूजा' शब्द में दो अलग-अलग प्रत्यय जोड़कर पूज्य तथा पूजनीय शब्द तो बन सकते हैं। परन्तु पूज्यनीय नहीं।

(ख) शब्दों में - य-व तथा -ई प्रत्यय जोडते समय शब्दों के स्वरूप में होने वाले ध्वनि परिवर्तनों का ध्यान रखना चाहिए।

(ग) इसी प्रकार विशेषणों में- इक प्रत्यय जोड़कर भाववाचक संज्ञा बनाने से पहले सन्धि नियमों का ध्यान रखना चाहिए। यदि मूल शब्द के प्रारम्भिक अक्षर में'आ' स्वर हो तो उसका रूप नहीं बदलेगा; जैसे- व्यापार + इक - व्यापारिक और कुछ शब्दों में वृद्धि दो स्थानों पर भी हो सकती है; जैसे- परलोक +इक- परलौकिक।

कुछ प्रमुख प्रत्यय नीचे दिए जा रहे हैं-

संज्ञा बनाने वाले प्रमुख प्रत्यय:-

आई - चढ़ाई, पढ़ाई, लिखाई, धुलाई, पिटाई, सिलाई।

आवट - मुस्कराहट, घबराहट, चिल्लाहट, कड़वाहट

आवत - मिलावट, लिखावट, दिखावट, सजावट।

आन - उड़ान, मिलान, लगान, उफान, उठान।

आव - छिपाव, बहाव, खींचाव, लगाव।

ई - मजाबूरी, तैराकी, नथनी, कथनी, तेजी, झिड़की।

अक - चालक, पालक, पावक, गायक, नायक।

ती - गिनती, बढ़ती, धरती, भरती, फबती।

ना - पढ़ना, लिखना, देखना, खेलना, सोना।

नी - कतरनी, धौंकनी, छननी, ओढ़नी।

ता - शिशुता, मनुष्यता, दानवता, मानवता, दासता।

त्व - पुरुषत्व, बंधुत्व, स्रत्व, नारीत्व, व्यक्तित्व।

विशेषण बनाने वाले प्रमुख प्रत्यय:-

आ - भूला, भटका, भूखा, मैला, प्यारा, दुलारा।

आऊ - कमाऊ, टिकाऊ, बिकाऊ, खाऊ।

आवना - लुभावना, डरावना, सुहावना।

इक - धार्मिक, नागरिक, सामाजिक, नैतिक, पौराणिक।

इत - आनंदित, समाहित, हर्षित।

इया - घटिया, बढ़िया, जडिया।

ई - असली, नकली, सरकारी, क्रोधी, शहरी।

ईय - भारतीय, प्रांतीय, जातीय, राष्ट्रीय, दर्शनीय।

ईला - रसीला, चमकीला, रोबीला, सजीला, ज़हरीला।

ऊ - बाजारू, चाल्झाडू।

मान - अभिमान, बुद्धिमान, गतिमान।

वाला - खानेवाला, पीनेवाला, पढ़नेवाला, फलवाला।

वान - धनवान, भाग्यवान, मूल्यवान।

ला - अगला, निचला, पहला, धुँधला।

क्रिया बनाने वाले प्रत्यय:-

ता - डूबता, चढ़ता, आता, जाता, रोता।

आ - जागा, बैठा, लेटा, उठा।

कर - सोकर, उठकर, बैठकर, लेटकर, लिखकर, खाकर।

ना - दौड़ना, खेलना, सोना, जागना, रोना, खाना।

भाववाचक संज्ञा बनाने वाले प्रत्यय:-

पा - मोटापा, आपा, बुढ़ापा।

आई - मोटाई, गोलाई, ऊँचाई।

ता - सुंदरता, कुरूपता, दुष्टता, मनुष्यता।

त्व - बंधुत्व, स्तरोत्व, व्यवितत्व, अस्तित्व।

औती - मनौती, चुनौती।

करतवाचक प्रत्यय

आर - कुम्हार, लुहार, मुनार।

इया - रसोइया, सुखिया, दुखिखिया।

अक - पाठक, सुधारक, लेखक।

कार - कलाकार, पत्रकार, कहानीकार, नाटककार साहित्यकार।

एरा - चितेरा, लुटेरा, सपेरा, ठठेरा।

गर- सौदागर, जादूगर, बाजीगर, कारीगर।

दार - दुकानदार, कर्जंदार, ईंमानदार।

वाला - लिखनेवाला, पढ़नेवाला, गाड़ीवाला, घरवाला।

कर्मवाचक प्रत्यय:-

वाँ - पाँचवाँ, सातवाँ, आठवाँ।

सरा - दूसरा, तीसरा।

हरा - इकहरा, दुहरा, तिहरा।

स्त्रीलिंगवाचक प्रत्यय:-

आ-प्रिया, बाला शिष्या सुता।

ई-देवी, शेरनी, लड़की, बेटी, चाची, मामी।

इन-धोबिन, सुनारिन, मालिन।

आनी-देवरानी, जेठानी।

क्रियाविशेषण बनाने वाले प्रत्यय:-

पूर्वक - सफलतापूर्वक, शांतिपूर्वक, धैर्यपूर्वक, प्रेमपूर्वक।

तः - साधारणतः, विशेषतः, सामान्यतः, फलतः ।

शः - पंक्तिशः अक्षरश:, वाक्यशः -

उपसर्ग और प्रत्यय का एक साथ प्रयोग:-

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनमें उपसर्ग और प्रत्यय दोनों का प्रयोग होता है।

जैसे :-

शब्द	**उपसर्ग**	**मूल शब्द**	**प्रत्यय**
अमानवीयता	अ	मानवीय	ता
बेकारी	बे	कार	ई
ईमानदारी	ई	मान	दारी

९.४ समास अर्थ, स्वरूप

परिभाषा:-

'पररपर संबंध रखने वाले दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर जब नया सार्थक शब्द बनाया जाता है तो, उस मेल को समास कहते हैं।" समास का तात्पर्य है, संक्षेप अर्थात दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर एक करना। संस्कृत धातु 'अस्' में सम् उपसर्ग जोडकर समास शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है समाहार या मिलाप। इस प्रकार हम पाते है कि वास्तव में समास का अर्थ संक्षेपीकरण हुआ। समास रचना के दो पद होते है। पहले पद को पूर्वपद कहते हैं और दूसरे पद को उत्तर पद कहते हैं। इन दोनों पदों से बना नया शब्द 'समस्त पद' कहलाता है।

पूर्व पद + उत्तर पद = समस्तपद

१) राजा + (का) पुत्र = राजपुत्र

२) घोड़ा + सवार (घोड़े पर सवार) = घुड़सवार

समास विग्रहः

जब समस्तपद के सभी पद अलग-अलग किए जाते है, तब इस प्रक्रिया को समास विग्रह कहते हैं।

जैसे:- यज्ञशाला का विग्रह है: यज्ञ के लिए शाला।

९.५ समास के प्रमुख भेद

समास के छह प्रमुख भेद होते हैं जो निम्न हैं:-

१) तत्पुरुष समास

२) कर्मधारय समास

३) द्विगु समास

४) द्वंद्व समास

५) अव्ययीभाव समास

६) बहुब्रीहि समास

१) तत्पुरुष समासः समस्त पद बनाते समय बीच की विभक्तियों का लोप हो जाता है। जैसे- यज्ञशाला का विग्रह है: यज्ञ के लिए शाला। तत्पुरुष समास के निम्मलिखित भेद है-

i) कर्म तत्पुरुषः जहां कर्म कारक की विभक्ति 'को' का लोप हो। जैसे.-

समस्तपद	विग्रह
यशप्राप्त	यश को प्राप्त
स्वर्गत	स्वर्ग को आगत
परलोगमन	परलोक को गमन
ग्रामगत	ग्राम को गत
जेब कतरा	जेब को कतरनेवाला

ii) करण तत्पुरुषः जहाँ करण कारक की विभक्ति 'से' का लोप हो। जैसे-

समस्तपद	विग्रह
हस्तलिखित	हस्त से लिखित
रेखांकित	रेखा से अंकित

भुखमरा	भूख से मरा
प्रेमातुर	प्रेम से आतुर
अकालपीड़ित	अकाल से पीड़ित

iii) संप्रदायन तत्पुरुषः जहॉ संप्रदायन कारक की विभफि के लिए का लोप हो। जैसे - समस्तपद विग्रह विद्यालय विद्या के लिए आलम, युख्भूभि युख के लिए भूमि, रसोईघर रसोइ के लिए घर, डाकगाडी डाक के लिए गाड़ी, मार्गव्य मार्ग के लिए व्यय, सत्याग्रह सत्य के लिए आ्रह, देशार्पण देश के लिए अर्पण, देशभक्ति देश के लिए भक्ति।

iv) अपादान तत्पुरुषः जहाँ अपादान कारक की विभक्ति 'से' का लोप है। जैसे -

समस्तपद	विग्रह
धनहीन	धन से हीन
विद्या हीन	विद्या से हीन
जन्मांध	जन्म से अंधा
पदच्युत	पद से च्युत
धर्माविमुख	धर्म से विमुख

v) संबध तत्पुरुषः जहाँ सबंध कारक की विभक्ति 'का', ‘की',’ के, 'का' लोप हो। जैसे-

समस्तपद	विग्रह
देवदास	देव का दास
आज्ञानुसार	आज्ञा के अनुसार
परनिंदा	पर की निंदा
विद्यासागर	विद्या का सागर

vi) अधिकरण तत्पुरुषः जहाँ अधिकरण कारक की विभक्ति ‘में','पर' का लोप हो जैसे

समस्तपद	विग्रह
युद्धनिपुण	युद्ध में निपुण
ग्रामवासी	ग्राम में वासी
सिरदर्द	सिर में दर्द
घुड़सवार	घोडे पर सवार
पुरुषोत्तम	पुरूषों में उत्तम

vii) नज्य समासः जहाँ निषेध के अर्थ में ‘न', 'अ' या अन का प्रयोग हो। जैसे:

समस्तपद	विग्रह
अन्याय	न न्याय

असफल	न सफल
अपठित	न पठित
अनिच्छा	न इच्छा

२) कर्मधारय समास: जिसका पहला पद विशेषण और दूसरा पद विशेष्य हो या एक पद उपमान तथा दूसरा पद उपमेय हो तो उसे 'कर्मधारण समास' कहते हैं।

i) विशेषण - विशेष्यः

समस्तपद	विग्रह
नीलकमल	नीला है जो कमल
पुरुषोत्तम	पुरूषों में है जो उत्तम
महाराज	महान है जो राजा

ii) उपमान - उपमेय:

समस्तपद	विग्रह
मृगलोचन	मृग के समान लोचन
चंद्रमुख	चंद्र के समान मुख
भुजदंड	दंड के समान भुजा
देहलता	देह रूपीलता

३) द्विगु समास:- जिस शब्द का पहला पद संख्यावाचक विशेषण होता है और किसी समूह विशेष का बोध कराता है जैसे-

समस्तपद	विग्रह
सप्ताह	सात दिनों का समूह
सतसई	सात सौ (दोहों) का समाहार
अठन्नी	आठ आनों का समूह
पंचतत्व	पांच तत्वों का समूह
चौराहा	चार राहों का समाहार

४) द्वंद्व समास:

जिस समस्तपद में दोनों पद प्रधान हो तथा विग्रह करने पर दोनों पदों के बीच 'और 'या' अथवा जैंसे योजक शब्दों का प्रयोग हो तो, उसे 'द्वंद्व समास' कहते हैं। द्वंद्व का अर्थ दो या दो से अधिक वस्तुओं का युम अर्थात जोड़ा होता है। जैसे-

समस्तपद	विग्रह
माँ -दाप	माँ और बाप
उतार-चढ़ाव	उतार या चढ़ाव
हार-जीत	हार या जीत
अपना-पराया	अपना या पराया
जल-थल	जल और थल
पाप-पुण्य	पाप और पुण्य

५) अव्ययीभाव समासः इसमें पहला पद अव्यय तथा प्रधान होता है। इस प्रक्रिया द्वारा बना समस्तपद भी अव्यय की भाँति कार्य करता है, इसी कारण इस समास का नाम अव्ययीभाव समास पड़ा है। संस्कृत में अव्ययीभाव समास में पूर्वपद अव्यय होता है और उत्तरपद संज्ञा या विशेषण, जैसे भरपेट यथासंभव यथासम्मान, यथायोग्य आदि लेकिन हिंदी समासों में इसके अपवाद स्वरूप पहला पद संज्ञा तथा विशेषण भी देखा गया है, जैसे: हाथों-हाथ ('हाथ' संज्ञा), हर घड़ी ('हर' विशेषण)।

समस्तपद	विग्रह
आमरण	मरण तक
आजन्म	जन्म से लेकर
यथाशक्ति	शक्ति के अनुसार
यथाशीघ्र	जितना शीघ्र हो सके
भरपेट	पेट भरकर
भरपूर	पूरा भरा हुआ
हाथों-हाथ	हाथों ही हाथ में
गॉव-गाँव	प्रत्येक गाँव

६) बहुब्रीहि समास:

जिस पद क दोनों पद प्रधान न हों और समस्तपद अपने पदों से भिन्न किसी अन्य संज्ञा का बोध करवाते हों, तो उसे बहुब्रीहि समास कहते हैं। इनका विग्रह करने पर विशेष रूप से वाला', 'वाली', 'जिसका', 'जिसकी', जिससे' आदि शब्द पाए जाते हैं जैसे-

समस्तपद	विग्रह
त्रिलोचन	तीन हैं लोचन जिसके अर्थात शिवा
चक्रपणि	चक्र है हाथ में जिसके अर्थात विष्णु
दशानन	दस है मुख जिसके अर्थात रावण
लंबोदर	लंबा है उदर जिसका अर्थात गणेश जी
घनश्याम	घन के समान श्याम है जो अर्थात कृष्ण
पंकज	पंक (कीचड) में पैदा होनेवाला अर्थात कमल

९.६ संधि और समास में अंतर

संधि तथा समास देखने में परस्पर मिलीं-जुली प्रक्रिया ही लगती है, परन्तु दोनों में अन्तर हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं:-

१) संधि में शब्दों के मेल होता है जबकि समास में पदों का मेल होता है।

२) संधि का अर्थ जोड़ है, समास का अर्थ है संक्षिप्त।

३) संधि तोड़ने को विच्छेद कहा जाता है किन्तु समास में अलग करने को विग्रह कहा जाता है।

४) संधि में जिन शब्दो का योग होता है, उनका मूल अर्थ परिवर्तित नहीं होता। जैसे- विद्यालय में विद्या और आलय दोनों शब्दों का मूल अर्थ सुरक्षित हैं, जबकि समास से बने शब्दों का मूल अर्थ सुरक्षित रह भी सकता है (जैसे: देशभक्ति, है सेना पति) और नहीं भी (जैसे जलपान)। जलपान का अर्थ जल का पान नहीं, अपितु नाश्ता है।

९.७ सारांश

प्रस्तुत इकाई में उपसर्ग, प्रत्यय और समास किसे कहते है, उसका स्वरुप तथा प्रमुख भेदों का सामान्य परिचय का अध्ययन किया हैं।| यहाँ पर 'समास' उस प्रक्रिया हो कहते है जिसमें दो या अधिक शब्द मिलाकर उनके बीच के संबधसूचक आदि शब्दों का लोप करके नया शब्द बनाते हैं।

९.८ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

प्र.१ उपसर्ग की परिभाषा देते हुए उदाहरण सहित समझाए।

प्र.२ प्रत्यय की परिभाषा देते हुए उदाहरण सहित समझाए।

प्र.३ उपसर्ग और प्रत्यय में क्या अंतर है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

प्र.४ समास किसे कहते हैं? समास के कितने भेद हैं? उदाहरण सहित लिखिए।

प्र.५ समास किसे कहते हैं। समास विग्रह से क्या समझते हैं उदाहरण दे हुए लिखिए।

प्र.६ समास तथा संधि में अंतर स्पष्ट कीजिए।

९.९ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र.१ दो शब्दों के संक्षेपण प्रक्रिया क्या कहलाती है?
उ.समास

प्र.२ समास रचना में कितने पद होते हैं?
उ. दो पद होते हैं।

प्र.३ दोनों पदों से बने नए शब्द को क्या कहते हैं?
उ. समस्त पद कहते हैं

प्र.४ समस्त के सभी पद को अलग-अलग करने की प्रक्रिया को क्या कहते हैं?
उ. समास विग्रह कहते हैं।

प्र.५ समास के कितने भेद होते हैं?
उ. छः भेद

प्र.६ शब्दों के आदि में जुड़कर शब्दों के अर्थ में विशेषता लाने वाले शब्दांश क्या कहलाते हैं?
उ. उपसर्ग कहते हैं।

प्र.७ जिस शब्द का पहला पद संख्यावाचक विशेषण होता है, उसे कौन सा समास कहते हैं?
उ. द्विगु समास (द्विग समास)।

प्र.८ जो शब्दांश शब्दों के अन्त में जुड़कर उनके अर्थ को बदल देते हैं, वे क्या कहलाते हैं?
उ. प्रत्यय।

प्र.९ किस समास में कोई पद प्रधान नहीं होते हैं?
उ. बहुब्रीहि समास।

प्र.१० किस, समास में समस्त पद अव्यय की भाँति काम करता है?
उ.अव्ययीभाव समास।

९.१० संदर्भ पुस्तके

१) हिंदी भाषा की रचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) हिंदी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु

३) हिंदी व्याकरण प्रकाश - डॉ. महेंद्रकुमार राना

४) व्याकरण दर्शिका - डॉ. मनीषा शर्मा

५) हिंदी व्याकरण एवं रचना - शशि शर्मा

❖❖❖❖

१०

समाज, संस्कृति और भाषा

इकाई की रूपरेखा:

१०.०. इकाई का उद्देश्य

१०.१. प्रस्तावना

१०.२. समाज, संस्कृति और भाषा

१०.३. भाषा और समाज का संबंध

१०.३.१. भाषा सामाजिक वास्तु

१०.३.२. भाषा व्यवहार

१०.३.३. भाषा समाज और संस्कृति की संवाहिका

१०.४. सारांश

१०.५. दीर्घोत्तरी प्रश्न

१०.६. लघुत्तरिय प्रश्न

१०.७. संदर्भ ग्रंथ

१०.०. इकाई का उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- भाषा और समाज का परस्पर संबंध बता सकेंगे।
- भाषा क्षमता तथा भाषा व्यवहार में आप भेद कर पाएंगे।
- सामाजिक स्तर भी से भाषा का संबंध स्थापित कर सकेंगे।
- सामाजिक स्तर भेद के आधार बता सकेंगे।
- भाषा प्रयोग की औपचारिक तथा अनौपचारिक स्थितियों की चर्चा कर सकेंगे।
- सामाजिक शैली एवं उसके प्रकारों का परिचय दे सकेंगे।
- शिष्टाचार एवं विनम्रता के सामाजिक संदर्भ देख सकेंगे।
- सामाजिक संदर्भ में भाषा प्रयोग के प्रति अधिक जागरूक हो सकेंगे।
- आप को भाषा और संस्कृति के संबंध का ज्ञान प्राप्त होगा।

१०.१. प्रस्तावना

भाषा शब्दों का प्रयोग अनेक अर्थों में प्रचलित है । भावाभिव्यक्ति के सभी साधनों को सामान्य रूप से भाषा कह दिया जाता है । यह भाषा अनेक अर्थों की हो सकती है | परंतु यहाँ पर समाज, संस्कृति और भाषा का हमें विस्तार से अध्ययन करना है । समाज और भाषा का यहाँ पर गहरा संबंध दिखाई देता है । दोनों एक-दूसरे पर निर्भर है । और व्यक्ति भी समाज का एक अंग ही है । प्रत्येक व्यक्ति का किसी समाज या व्यक्ति से संबंध होता है । सामाजिक परिवेश में आकार ही भाषा का स्वरुप निखरता है । और वही भाषा, समाज और संस्कृति को एकसूत्र में बाँधकर रखती है ।

१०.२. समाज, संस्कृति और भाषा

भाषा केवल व्याकरणिक संरचना में बंधी नहीं रहती। जब समाज में भाषा का व्यवहार होता है तो वह व्यावहारिक भी होती है। और व्याकरण के बंधनों को तोड़ भी देती है। यह तो हम सब जानते हैं कि भाषा का व्यवहार समाज में होता है। और समाज अनेक वर्गों में और अनेक स्तरों में बँटा हुआ होता है ।

इस सामाजिक स्तर भेद के कारण भाषा के भी कई स्तर बन जाते हैं । भाषा और समाज का चोली दामन का संबंध है। बिना समाज के भाषा का कभी विकास हो ही नहीं सकता। भाषा के दृष्टि से समाज उसकी नींव है। किसी भी भाषा का आधार समाज ही होता है। यदि समाज नहीं तो भाषा को बोलने वालों के न होने पर उस भाषा का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता। इसलिए भाषा को ऊंचाई पर ले जाने के लिए अगर देखा जाए तो समाज की आवश्यकता सर्वाधिक है। इसी तरह से समाज का विकास भी भाषा के द्वारा ही संभव है भाषा और समाज का संबंध अभिन्न है।

भाषा सीखने की क्षमता तो इंसान में होती है। लेकिन उसे एक भाषायी समाज में रहकर ही सीखा जा सकता है। भाषा के माध्यम से ही समाज एक और संगठित हो सकता है। भाषा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक उस समाज के विचारों को पहुंचाती है। भाषा के माध्यम से ही उस समाज के सभी वर्गों के लोगों के बीच विचारों और ज्ञान को साझा करने का प्रयास किया जा सकता है।

भाषा के माध्यम से ही समाज की सोच व्यवहार और सामाजिक संबंधों को हम समझ सकते हैं भाषा मनुष्य की सामाजिक प्राणी होने का सबसे बड़ा प्रमाण है भाषा संप्रेषण का शिक्षक मध्य होने के साथ-साथ उसे समाज की संस्कृति की संवाहक भी है भाषा संप्रेषण का सशक्त माध्यम होने के साथ-साथ उस समाज की बहुत सी रीतियों, रूढ़ियों, विश्वासों को भी अपने साथ ले चलती है। भाषा हमारी सांस्कृतिक पहचान और हमारी सामाजिक वास्तविकताओं पर प्रभाव छोड़ती है भाषा समाज के लोगों के व्यक्तित्व का विकास करती है भाषा के संस्कार में बड़ों का बहुत बड़ा योगदान रहता है अक्सर यह सुना जाता है कि भाषा समाज का दर्पण है, हम जिन शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। वे हमारे दृष्टिकोण मूल्य और विश्वासों को समाज के सामने, विश्व के सामने प्रकट करती हैं।

भाषा और संस्कृति भाषा के संदर्भ में हम ऊपर पढ़ चुके हैं विशेष रूप में हम अब यहां संस्कृति के विषय में और उसकी विशेषताओं के संदर्भ में कुछ समझ कर भाषा के साथ उसका क्या संबंध है इस पर चर्चा यहां करेंगे। संस्कृत शब्द 'सम' प्लस 'कृति' द्वारा बना है जिसका अर्थ है पूरी तरह से बने जाना यहाँ यह प्रश्न उठता है कि कौन बनाता है तो हम इसका उत्तर यह देते हैं कि समाज क्योंकि मनुष्य समाज से ही संस्कृति प्राप्त करता है उसका जीवन पूरी तरह से समाज बनता है उसे घटना है उसकी सोच में और बदलाव करता है उसे नया रूप देता है उसे कई नए मोड़ देता है जीवन को देखने की एक सो देता है तो इसे ही हम मोटे तौर पर संस्कृति कहते हैं।

कुछ विद्वानों ने इस प्रकार इसकी परिभाषा दी है:

संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुण के समग्र स्वरूप का नाम है जो उस समाज के सोचने विचारने कार्य करने के स्वरूप में अंतर्निहित होता है। यह 'कृ' (करना) धातु से बना है। जिसका अर्थ है करना।

लैटिन भाषा के कल्ट यहां कल्टस से कल्चर शब्द बना है। जिसका अर्थ है जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना। संक्षेप में किसी वस्तु को यहां तक संस्कारित और परिष्कृत करना। इसका अर्थ निकलता है। यह ठीक उसी तरह जैसे संस्कृत भाषा का शब्द संस्कृति।

संस्कृति का शब्दार्थ प्राप्त होता है उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। मनुष्य का स्वभाव होता है प्रगतिशील प्राणी है। यह बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक स्थिति को निरंतर सुधारता और उन्नत करता रहता है। ऐसी प्रत्येक जीवन पद्धति रीति-रिवाज, रहन-सहन, अचार-विचार, नवीन अनुसंधान और अविष्कार जिससे मनुष्य पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊंचा उठा है तथा सभ्यता है। सभ्यता संस्कृति का अंग है। सभ्यता से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है। जबकि संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है। मनुष्य केवल भौतिक परिस्थितियों में सुधार करके ही संतुष्ट नहीं हो जाता। वह भोजन से ही नहीं जीता, शरीर के साथ मन और आत्मा भी है।

भौतिक उन्नति से शरीर की भूख मिट सकती है। किंतु इसके बावजूद मन और आत्मा तो अतृप्त ही बने रहते हैं। अन्य संतुष्ट करने के लिए मनुष्य अपना जो विकास और उन्नति करता है उसे संस्कृति कहते हैं। मनुष्य की जिज्ञासा का परिणाम धर्म और दर्शन होते हैं। सौंदर्य की खोज करते हुए व संगीत साहित्य मूर्ति चित्र और वास्तु आदि अनेक कलाओं को उन्नत करता रहा है। सुखपूर्वक निवास के लिए सामाजिक और राजनीतिक संगठनों का निर्माण करता है। इस प्रकार मानसिक क्षेत्र में उन्नति की सूचक उसकी प्रत्येक सम्यक कृति संस्कृति का अंग बनती है। इसमें प्रधान रूप से धर्म दर्शन सभी ज्ञान विज्ञानों और कलाओं सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं और प्रथाओं का समावेश होता है।

संस्कृति की अवधारणा यह है की संस्कृति जीवन की विधि है। जो भोजन हम खाते हैं। जो कपड़े पहनते हैं, जो भाषा बोलते हैं, और जिस ईश्वर की पूजा करते हैं। ये सभी सभ्यता कहलाते हैं। तथापि इससे संस्कृति भी सूचित होती है। सरल शब्दों में कह सकते हैं की संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसके आधार पर हम सोचते हैं। और कार्य करते हैं। इसमें

भी अमूर्त अभौतिक भाव और विचार भी सम्मिलित हैं। जो हमने एक परिवार और समाज के सदस्य होने के नाते उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं। एक समाज वर्ग के सदस्य के रूप में मानव की सभी उपलब्धियां उसकी संस्कृति से प्रेरित कहीं जा सकती हैं। कला संगीत साहित्य वास्तु विज्ञान शिल्प विज्ञान दर्शन धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के प्रकट पक्ष हैं। तथापि संस्कृति में रीति रिवाज परंपरायें पर्व जीने के तरीके और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित है।

भाषा और संस्कृति का अंत: संबंध:-

भाषा और संस्कृति के बीच का रिश्ता जटिल है। दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। एक खास भाषा आमतौर पर लोगों के विशेष समूह को दर्शाती है। जब आप किसी दूसरी भाषा के साथ बातचीत करते हैं तो उसका अर्थ है कि आप उस भाषा को बोलने वाली संस्कृति के साथ भी संबंध जोड़ते हैं। आप किसी की संस्कृति को सीधे उसकी भाषा तक पहुंचे बिना नहीं समझ सकते।

जब आप कोई नई भाषा सीखते हैं, तो इसमें न केवल उसकी वर्णमाला, शब्द व्यवस्था और व्याकरण के नियम सीखना शामिल होता है। बल्कि विशिष्ट समाज के रीति-रिवाज और व्यवहार के बारे में भी सीखना शामिल होता है। किसी भाषा को सीखने यहां सीखते समय यह महत्वपूर्ण है कि उस संस्कृति का संदर्भ दिया जाए। जहां की भाषा है। क्योंकि भाषा उस संस्कृति में बहुत गहराई से समाहित होती है।

भाषा सीखते समय हमें उस संस्कृति विशेष के बहुत से साधनों और वस्तुओं से संपर्क जोड़ना पड़ता है। जिनके विषय में हमको ज्ञात नहीं होता। इसलिए भाषा का संबंध उस संस्कृति के साथ बड़ी गहराई और गंभीरता से देखा जाता है। क्योंकि जब आप उसे भाषा का प्रयोग करते हैं तो आप जिन बातों पर बोल देना चाहते हैं। उनका पूरा ज्ञान आपको होना चाहिए। एक संस्कृति की ये विशिष्ट संचार तकनीकें ज्यादातर लोगों की नकल करके और उन्हें देखकर सीखी जाती हैं। प्रारंभ में माता-पिता और रिश्तेदारों से और बाद में दोस्तों और नजदीकी पारिवारिक दायरे से बाहर के लोगों से हम उस संस्कृति विशेष को सिखते हैं।

शारीरिक भाषा जिसे 'केईनेसिक्स' के नाम से भी जाना जाता है। पैरालैंग्वेज का सबसे स्पष्ट प्रकार है। ये मुद्राएं भाव और हाव-भाव हैं। जिनका उपयोग गैर मौखिक भाषा के रूप में किया जाता है। हालांकि आवाज के चरित्र या स्वर को बदलकर विभिन्न शब्दों के अर्थ को बदलना भी संभव है।

भाषा और संस्कृति के बीच समजातीय संबंध:-

भाषा एवं संस्कृति पर विचार करते समय अक्सर यह वाक्यांश सुनाई देता है की भाषा संस्कृति है और संस्कृति भाषा है का स्वर सुनाई पड़ता है।

ऐसा इसलिए है की दोनों के बीच एक समान किंतु जटिल संबंध है भाषा और संस्कृति एक साथ विकसित हुई और विकसित होने के साथ-साथ एक दूसरे को प्रभावित भी किया है। इस संदर्भ का उपयोग करते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका के एक सांस्कृतिक मानव विज्ञानी

अल्फ्रेड एल. क्रॉबर ने कहा कि संस्कृति तब शुरू हुई जब भाषा और भाषण उपलब्ध था और उस शुरुआत से किसी एक के समृद्ध होने से दूसरे का और अधिक विकास हुआ।

यदि संस्कृति मनुष्यों के आपसी संबंधों का परिणाम है, तो संचार के कार्य एक विशिष्ट समुदाय के भीतर उनकी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियां हैं। इटली के दार्शनिक फेरोशियो राशि लेंडी जिनका काम दर्शन, संकेतिकता और भाषा विज्ञान पर विचार केंद्रित था। ने कहा कि एक भाषण समुदाय उन सभी संदेशों से बनता है जो एक दूसरे के साथ एक निश्चित भाषा का उपयोग करके आदान-प्रदान किए जाते हैं। जिसे पूरा समाज समझता है। रासी लेंडी ने आगे कहा कि छोटे बच्चे अपनी भाषा और संस्कृति उसे समाज से सीखते हैं जिसमें पैदा हुए हैं सीखने की प्रक्रिया में वे अपनी संज्ञानात्मक क्षमताओं का भी विकास करते हैं।

शिकागो विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान, भाषा विज्ञान और नृविज्ञान पढ़ाने वाले प्रोफेसर माइकल सिल्वरस्टीन के अनुसार संस्कृति का संचारी दबाव वास्तविकता के पहलुओं का प्रतिनिधित्व करता है। और साथ ही विभिन्न संदर्भों को जोड़ता है। इसका अर्थ यह है की घटनाओं, पहचानो, भावनाओं और विश्वासों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिकों का उपयोग भी इन चीजों को वर्तमान संदर्भ में लाने का तरीका है।

लोगों के सोने के ढंग को प्रभावित करना:-

भाषाई सापेक्ष का सिद्धांत हमें बताता है कि भाषा सीधे तौर पर लोगों की दुनिया को देखने के ढंग को प्रभावित करती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के मानव विज्ञानी भाषाविद एडवर्ड सेपिर ने कहा कि लोगों के विशिष्ट समूहों की भाषा की आदतें वास्तविक दुनिया का निर्माण करती हैं। उन्होंने आगे कहा कि कोई भी दो भाषाएं इस तरह से समान नहीं होती है, कि वे एक समाज का प्रतिनिधित्व करें। प्रत्येक समाज के लिए दुनिया अलग है। विश्लेषण में इसका मतलब यह है कि एक भाषा बोलने का मतलब है कि एक व्यक्ति एक संस्कृति को अपना रहा है। इस सिद्धांत के आधार पर किसी अन्य संस्कृति को जानना उसकी विशेष भाषा को जानना है और हमें उस दुनिया की व्याख्याओं और प्रतिनिधित्व को उजागर करने के लिए संचार की आवश्यकता है । यही कारण है कि किसी भी नई भाषा को सिखाते समय भाषा और संस्कृति के बीच संबंध आवश्यक है।

अन्तःसांस्कृतिक संबंध-संपर्क:-

यदि दो संस्कृतियों के बीच बातचीत होती है तो क्या होने की संभावना है? आज के परिदृश्य में अन्तः सांस्कृतिक बातचीत बहुत महत्वपूर्ण है। संचार किसी भी व्यक्ति के लिए आवश्यक है। जो उन लोगों को समझना और उनके साथ मिलना चाहता है। उनकी पृष्ठभूमि और विश्वास उनके अपने से बहुत अलग हैं।

सांस्कृतिक पहचान को दर्शाने के लिए भाषा का प्रयोग करना आसान है। किंतु हम प्रक्रियाओं और विकास का वर्णन करने के लिए भी भाषा का प्रयोग करते हैं। जैसे किसी विशिष्ट वक्ता के इरादों को स्पष्ट करना। विशिष्ट भाषण विशेष सांस्कृतिक समूहों को संदर्भित करती है।

किसी जातीय समूह द्वारा साझा किए जाने वाले मूल्य, बुनियादी मान्यताएं व्यवहार संबंधी परंपराएं विश्वास और दृष्टिकोण मिलकर वह बनते हैं जिसे हम संस्कृति कहते हैं। विशेषताओं का यह समूह समूह के अलग-अलग सदस्यों के व्यवहार और प्रत्येक सदस्य द्वारा प्रदर्शित व्यवहार की अर्थो की उनकी व्याख्याओं को प्रभावित करता है।

भाषा के माध्यम से ही हम संस्कृति के गुणों को व्यक्त करते हैं। हम अपनी संस्कृति में अद्वितीय वस्तुओं को इंगित करने के लिए भी भाषा का प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ यह है कि अंतरराष्ट्रीय संचार और सहयोग के लिए दूसरी भाषा सीखना और सिखाना अति आवश्यक है। दूसरी भाषाओं का ज्ञान दूसरे देशों और हर एक विशिष्ट संस्कृतियों के विषय में जानने में मदद करता है। फिर से यही कारण है की भाषा और संस्कृति के बीच का संबंध बहुत महत्वपूर्ण है।

भाषा और संस्कृति का प्रसारण:-

भाषा सीखी जाती है जिसका अर्थ है कि इसे सांस्कृतिक रूप से प्रसारित किया जा सकता है। प्री-स्कूल के बच्चे अपने घरों में और बाहर मिलने वाले यादृच्छिक शब्दों के संपर्क से अपनी पहली भाषा सीखते हैं। जब वे स्कूल जाने की उम्र में पहुंचते हैं तो वे अपनी पहली भाषा या दूसरी भाषा सीखते हैं। यदि यह पहली भाषा है। तो बच्चों को लिखना और पढ़ना वाक्य बनाने के सही तरीके और औपचारिक व्याकरण का उपयोग करना सिखाया जाता है। हालांकि बच्चों को स्कूल जाने से पहले ही पहली भाषा की आवश्यक संरचना और शब्दावली के बारे में प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

इसके विपरीत संस्कृति का एक बड़ा हिस्सा भाषा द्वारा शिक्षण के माध्यम से प्रसारित होता है। भाषा ही वह कारण है जिसके कारण मनुष्यों के पास ऐसे इतिहास हैं जो जानवरों के पास नहीं है। इतिहास के दौरान जानवरों के व्यवहार के अध्ययन में, उनके व्यवहार में परिवर्तन पालतू बनाने और अन्य प्रकार के हस्तक्षेप के माध्यम से मनुष्यों के हस्तक्षेप का परिणाम थे।

दूसरी ओर मनुष्य की संस्कृति दुनिया की भाषाओं की तरह ही अलग-अलग है। समय के साथ में बदलाव होने की संभावना है। औद्योगिक देशों में भाषा में बदलाव ज्यादा तेजी से होता है।

भाषा संस्कृति को आकर देती है : हम संस्कृति को मौखिक शिक्षा से सीखते हैं, नकल से नहीं। यदि शिक्षार्थी अभी भी युवा है तो कुछ नकल हो सकती है। भाषा के साथ हमारे पास सामाजिक नियंत्रण, उत्पादन, तकनीक और कौशल के तरीकों को समझने का एक बेहतर तरीका है। बोली जाने वाली भाषा समुदाय के लिए उपयोगी जानकारी की एक विशाल मात्रा प्रदान करती है। यह नए कौशल अधिग्रहण और नए वातावरण या बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल होने की तकनीक को तेज करने में मदद करती है।

लेखन के आगमन ने सांस्कृतिक प्रसार की प्रक्रिया को बढ़ाया। लेखन की स्थाई स्थिति के कारण सूचना का प्रसार बहुत आसान हो गया और मुद्रण के आविष्कार और साक्षरता में वृद्धि के कारण यह प्रक्रिया विकसित और तेज होती जा रही है।

प्रसारण के माध्यम से दुनिया भर में तेजी से संचार संचरण के लिए आधुनिक तकनीकी और दुनिया भर में अनुवाद सेवाओं की मौजूदगी दुनिया में कहीं भी लोगों के लिए उपयोगी ज्ञान को सुलभ बनाने में मदद करती है। इस प्रकार दुनिया को सामाजिक राजनीतिक तकनीकी और वैज्ञानिक ज्ञान के तेज हस्तांतरण उपलब्धता और आदान-प्रदान से लाभ होता है।

सांस्कृतिक एवं भाषाई विविधता:

संस्कृति एक समुदाय को एकजुट करती है, हालांकि उस एकता के भीतर विविधता भी होती है। उदाहरण के लिए पुरानी पीढ़ी की बोली युवा लोगों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली बोली से अलग हो सकती है। साथ ही अलग-अलग समुदाय अलग-अलग भाषाएं बोलते हैं। यह विश्वविद्यालय में एक युवा प्रशासनिक कर्मचारी की तुलना में प्रोफेसर के भाषण में मौजूद अंतरों से स्पष्ट है। लोग ऑनलाइन फॉर्म में एक ही भाषा के एक अलग रूप का उपयोग कर सकते हैं। जो मीडिया और शास्त्रीय रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली भाषा से बिल्कुल अलग होगा।

हम भाषा का इस्तेमाल अलग-अलग तरीकों से करते हैं। भाषाई विविधताएं भौगोलिक, सामाजिक और कार्यात्मक उपवर्गों में आती हैं । यह कारक बोलियो के निर्माण की ओर ले जाते हैं। जो भाषा में विविधता जोड़ते हैं।

इस तरह से हम कह सकते हैं कि भाषा और संस्कृति का संबंध बहुत गहरा है। भाषा और संस्कृति एक दूसरे के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकती। भाषा संस्कृति को विशिष्टता प्रदान करने वाला एक प्रमुख पहलू है। संस्कृति व्यक्ति या समाज के चिंतन का प्रतिफल होती है और जिस भाषा में आप चिंतन करते हैं। उसकी प्रतिछाया या आपकी संस्कृति में भी दिखती है। भाषा और संस्कृति के संबंध में कुछ और बातें ध्यान देनी योग्य है।

भाषा मानव चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम है। भाषा के माध्यम से लोग अपने विचार, विश्वास, चिंताएं, धारणाएं, अपेक्षाएं, अनुभव और ज्ञान आपस में आदान-प्रदान करते हैं।

भाषा सीखने से व्यक्ति इस भाषा को बोलने वाले लोगों के साथ पहचान बनाने में सक्षम हो जाता है भाषा के माध्यम से किसी भी कौशल तकनीक उत्पाद सामाजिक नियंत्रण के तरीके आदि को समझाया जा सकता है भाषा किसी संस्कृति का रोड मैप है। यह बताती है कि इसके लोग कहां से आते हैं और कहां जा रहे हैं। किसी भी संस्कृति के विकास में भाषा और साहित्य का बहुत बड़ा योगदान रहता है। साहित्य से सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति होती है और सामाजिक तथा सांस्कृतिक मानकों की स्थापना भी होती है । किसी भी संस्कृति के विकास में भाषा और साहित्य का अपना महत्वपूर्ण योगदान रहता है। साहित्य के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति होती है और सामाजिक तथा सांस्कृतिक मानकों की स्थापना भी होती है।

समाज और भाषा:-

भाषा और समाज का चोली दामन का संबंध है। बिना समाज के भाषा का कभी विकास हो ही नहीं सकता। भाषा के दृष्टि से समाज उसकी नींव है। किसी भी भाषा का आधार समाज

ही होता है। यदि समाज नहीं तो भाषा को बोलने वालों के न होने पर उस भाषा का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता। इसलिए भाषा को ऊंचाई पर ले जाने के लिए अगर देखा जाए तो समाज की आवश्यकता सर्वाधिक है। इसी तरह से समाज का विकास भी भाषा के द्वारा ही संभव है भाषा और समाज का संबंध अभिन्न है।

भाषा सीखने की क्षमता तो इंसान में होती है। लेकिन उसे एक भाषायी समाज में रहकर ही सीखा जा सकता है।

भाषा के माध्यम से ही समाज एक और संगठित हो सकता है। भाषा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक उस समाज के विचारों को पहुंचाती है।

भाषा के माध्यम से ही उस समाज के सभी वर्गों के लोगों के बीच विचारों और ज्ञान को साझा करने का प्रयास किया जा सकता है।

भाषा के माध्यम से ही समाज की सोच व्यवहार और सामाजिक संबंधों को हम समझ सकते हैं भाषा मनुष्य की सामाजिक प्राणी होने का सबसे बड़ा प्रमाण है भाषा संप्रेषण का शिक्षक मध्य होने के साथ-साथ उसे समाज की संस्कृति की संवाहक भी है भाषा संप्रेषण का सशक्त माध्यम होने के साथ-साथ उस समाज की बहुत सी रीतियों, रूढ़ियों, विश्वासों को भी अपने साथ ले चलती है। भाषा हमारी सांस्कृतिक पहचान और हमारी सामाजिक वास्तविकताओं पर प्रभाव छोड़ती है भाषा समाज के लोगों के व्यक्तित्व का विकास करती है भाषा के संस्कार में बड़ों का बहुत बड़ा योगदान रहता है अक्सर यह सुना जाता है कि भाषा समाज का दर्पण है, हम जिन शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। वे हमारे दृष्टिकोण मूल्य और विश्वासों को समाज के सामने विश्व के सामने प्रकट करती हैं।

भाषा केवल व्याकरणिक संरचना में बंधी नहीं रहती। जब समाज में भाषा का व्यवहार होता है तो वह व्यावहारिक भी होती है। और व्याकरण के बंधनों को तोड़ भी देती है। यह तो हम सब जानते हैं कि भाषा का व्यवहार समाज में होता है। और समाज अनेक वर्गों में और अनेक स्तरों में बँटा हुआ होता है।

इस सामाजिक स्तर भेद के कारण भाषा के भी कई स्तर बन जाते हैं। हम जिस समाज में रहते हैं उसके नियमों और मान्यताओं के अनुरूप ही भाषा का उपयोग करते हैं। यदि हम ऐसा करते हैं। तभी हमारा भाषा प्रयोग उपयुक्त और सटीक माना जाता है। हर समाज बाहरी संसार को अपने ढंग से देखा है और उसी भाषा में संगठित और व्यक्त भी करता है। भाषा जिस समाज की होती है वह समाज स्तरीकृत होता है समाज अलग-अलग स्तरों पर मोटा होने के कारण भाषा के भी अलग-अलग स्तर हो जाते हैं। साथ ही भाषा श्रोता के आधार पर भी भिन्न-भिन्न हो सकती है। इस प्रकार सामाजिक संदर्भ में भाषा विषय रूपी होती है। इस विविधता का परिचय देना ही इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है।

१०.३. भाषा और समाज का सह संबंध

१०.३.१ भाषा सामाजिक वस्तु है -

भाषा एक सामाजिक वस्तु है और उसका संबंध भाषा भाषी समाज के प्रत्येक व्यक्ति से रहता है उसका विकास अर्जन और प्रयोग तीनों ही समझ में होते हैं यहां तक के भाषा की उत्पत्ति भी समाज द्वारा ही संभव है इसलिए भाषा के पूर्ण रूप को समझने के लिए उसे

समाज एवं वातावरण का ज्ञान आवश्यक है जहां उसका व्यवहार होता है मनुष्य समाज में तो भाषा का व्यवहार करता ही है एकांत में उसके मनन चिंतन का आधार भी भाषा है मनुष्य जब अपने से ही बात करता है तो उसके व्यक्तित्व का एक पक्ष सामाजिक रूप ग्रहण कर लेता है स्वयं अपने से जब मनुष्य प्रश्न करें और उत्तर भी स्वयं देता चली तो भाषा की सामाजिकता स्पष्ट हो जाएगी।

भाषा की उत्पत्ति सामाजिक समसर्ग के कारण जब हम भाषा की उत्पत्ति पर विचार करते हैं तो कुछ बातों को ध्यान में रखना चाहिए। पहले तो बोलने वाले की शक्ति कैसे और कब उत्पन्न होती है। दूसरे उच्चरित ध्वनियों का उनके अर्थों के साथ संबंध किस प्रकार स्थापित होता है। तीसरे यह अर्थ संबंध किस प्रकार कहां व्यापक होता है? इन स्थितियों की कल्पना किसी समाज के अभाव में हम नहीं कर सकते। यह कहा जा सकता है कि ध्वनि उत्पादन की क्षमता मनुष्य में जन्मजात होती है। किंतु उसके प्रयोग का अवसर समाज ही उसे प्रदान करता है।

मातृभाषा शब्द का साधारण अर्थ है 'माता की भाषा'। किंतु माता उस भाषा की निर्मात्री नहीं होती, बल्कि पूर्व पुरुषों से प्राप्त भाषा को अपने शिशुओं तक पहुंचाने का कार्य करती है। इस प्रकार उसने स्वयं उसे अपनी माता से प्राप्त किया है। अतः उसके प्रति ऋण स्वीकार करते हुए और कृतज्ञता को व्यक्त करते हुए मातृभाषा शब्द का प्रयोग किया जाता है। शिशु जन्म लेने के बाद जिस भाषाभाषी समाज से पालित पोषित होता है। उसी की भाषा को सीखता है। यदि किसी शिशु का पालन पोषण किसी दूसरे देश में होता है तो वह वहां की ही भाषा सीखता है। आज जो भारतीय कार्य वश अमेरिका, इंग्लैंड, रुस आदि दूसरे देशों में रह रहे हैं। वे आज वहां की ही भाषा सीख रहे हैं। यही स्थिति बंगाल में रहने वाले मराठी परिवार के बच्चों की अथवा दक्षिण में रहने वाले बंगाली परिवार के बच्चों की अथवा उत्तर प्रदेश में रहने वाले दक्षिण परिवार के बच्चों की कही जा सकती है। ऐसे बच्चे घर में मातृभाषा भी सीख जाते हैं और इस प्रकार दो-दो अथवा तीन-तीन भाषाओं के ज्ञाता भी हो जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि भाषा समाज से प्राप्त की जाती है बिना समाज के भाषा का कोई अस्तित्व नहीं रह सकता। और समाज भी भाषा के बिना नहीं रह सकता।

१०.३.२ भाषा व्यवहार:

जब हम भाषा का अध्ययन भाषा व्यवहार के संबंध में करते हैं, तो भाषा के सामाजिक संदर्भ को अनिवार्य रूप से मान्यता मिल जाती है। भाषा अपने व्यवहार में विभिन्न रूप ग्रहण करती है। इसलिए आज के भाषा वैज्ञानिक यह मानते हैं कि किसी भाषा का व्याकरण लिखना आसान काम नहीं है। क्योंकि जो व्याकरण लिखा जाता है तो वह व्यावहारिक भाषा का व्याकरण नहीं होता। जो व्यक्ति अपनी भाषा को बोलता है वह भाषा के बारे में उससे कहीं अधिक जानता है । कितना भी किसी व्याकरण की पुस्तक में विवेचित होता है। इसलिए भाषा के नियमों का ज्ञान भाषा समुदाय के सदस्यों के लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं होता, जितना कि भाषा प्रयोग के नियमों का ज्ञान। वास्तव में भाषा प्रयोजन में भाषा संबंधों का जो ज्ञान होता है वह भाषा प्रयोग और कार्यों को संपादित करने के लिए नियमों का ज्ञान होता है। इन कार्यों को वह ध्वनियों, शब्दों और वाक्य जैसे व्याकरण इकाइयों के माध्यम से पूरा करता है। लेकिन व्याकरण की पुस्तकों में दी गई कुछ विशिष्ट ध्वनियों शब्दों तथा वाक्य

के माध्यम से वह यह नहीं करता इनके प्रयोग के नियमों की जानकारी किसी भी व्याकरण की पुस्तक में नहीं दी जाती।

भाषा प्रयोग की इन नियमों को ही समाज के सदस्य आपस में समान रूप से बाँटते हैं। इसी ज्ञान के आधार पर संप्रेषण संभव होता है। अतः यह मानकर चलना सही नहीं होगा कि भाषा के व्यावहारिक रूप का कोई महत्व नहीं है। यह तो हम और साफ देख सकते हैं कि अपने प्रतिदिन के जीवन में हम जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह वैविध्य पूर्ण होती है। इस विविधता पर यदि हम ध्यान दें तो यह भी साफ देख सकते हैं कि वक्ता श्रोता स्थिति और संदर्भ आदि के अनुसार हमारा भाषा व्यवहार भी बदलता है। इसलिए भाषा को अब भाषा क्षमता से जोड़कर एक रूपी नहीं बल्कि भाषा व्यवहार से जोड़कर विविध रूपी माना जाता है। वह विविधता का मतलब यह बिल्कुल नहीं कि कोई व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार या मनमाने ढंग से भाषा का प्रयोग कर सकता है। हम एक शब्द का उच्चारण भी मनमाने ढंग से नहीं कर सकते। समाज में भाषा वैविध्य प्रयोग की सीमाएं होती हैं। इन सीमाओं का निर्धारण और इनका नियंत्रण भी समाज ही करता है। वास्तव में यही निर्धारण और नियंत्रण भाषा प्रयोग के समाज संदर्भित नियम है।

१०.३.३. भाषा समाज और संस्कृति की संवाहिका:

हमने यह देखा की भाषा वह है, जिसका प्रयोग 'लोग' करते हैं। लोग समाज में रहते हैं, और लोगों की अपनी संस्कृति होती है। वास्तव में हर समाज की अपनी संस्कृति होती है। संस्कृति का परिचय हमें किसी समाज की भाषा से भी मिलता है। अतः संस्कृति और भाषा का संबंध भी अटूट है। व्यक्ति की संस्कृति का बोध हमें उसके संगीत, साहित्य, कला आदि के द्वारा प्राप्त होता है। संस्कृति का सामान्य अर्थ यह है कि व्यक्ति यह जाने की अपने समाज में उसे कैसे व्यवहार करना है? जैसे भारतीय समाज में रहते हुए यह जानना की अपनी आयु से वरिष्ठ व्यक्ति के सामने हमें उठकर खड़े हो जाना चाहिए। चीज सदैव दाएं हाथ से लेनी देनी चाहिए। ऐसी बहुत सी बातें हैं हम भाषा के माध्यम से सीखते हैं और उसे राष्ट्र और समाज को समझते हैं। भाषा में ऐसे बहुत से शब्द होते हैं जो समाज में प्रचलित हैं। जिनके माध्यम से हम संस्कृति का ही प्रचार-प्रसार करते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं की भाषा संस्कृति की संवाहिका तो है ही, साथ में भाषा समाज की बहुत सी बातों को प्रचारित प्रसारित भी करती रहती है।

सामाजिक स्तर भेद के आधार:-

जब हम यह कहते हैं कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। तथा भाषा और समाज का गहरा संबंध होता है। तो हमारे लिए समाज का केवल एक समाज के रूप में देखना पर्याप्त नहीं होता। तब हमें संस्कृति समाज इन को देखना पड़ता है। समाज का यह स्तर भाषा के भी प्रयोग के धरातल पर एक नहीं रहने देते। उसे विविध रूपी बना कर छोड़ते ही हैं। इसलिए समाज के संदर्भ में भाषा के हम जब संदर्भ देखते हैं तो उनको हम निम्नलिखित आधारों पर बांट सकते हैं।

शिक्षा, वर्ग, व्यवसाय और पद ।

भारतीय समाज में शिक्षा सबको प्राप्त हो यह प्रयास किया जा रहा है इसलिए यहां उच्च शिक्षित अर्थ शिक्षित अशिक्षित अनपढ़ इस स्तर के लोग प्राप्त होते हैं शिक्षा के कारण भी हम देखते हैं की भाषा में परिवर्तन होते हैं और भाषा भी शिक्षा के कारण समाज में परिवर्तन ला देती है बोलने सोचने और विविध शब्दों के कारण हम यह समझते हैं कि हमारे समक्ष खड़ा हुआ व्यक्ति शिक्षित है कि अशिक्षित है।

शिक्षा और भाषा के कारण भी हम देखते हैं कि कई बार वर्ग बन जाते हैं। वर्तमान युग में वर्ग की संकल्पना शिक्षा और भाषा के कारण ही बनी है। जो सुशिक्षित और पूरी तरह से शिक्षित हैं उन्हें समाज में श्रेष्ठ पद प्राप्त होते हैं। जो अर्ध शिक्षित हैं। हम देखते हैं कि वे व्यवसाय से जुड़ जाते हैं। या फिर कुछ काम चलाऊ कार्य कर लेते हैं। अशिक्षित लोग अधिकतर निम्न वर्ग में आ जाते हैं। इस प्रकार शिक्षा और भाषा वर्ग की स्थापना भी कर देती है। अच्छी भाषा और शिक्षा के द्वारा हम श्रेष्ठ व्यवसाय भी कर लेते हैं। आज विश्व के जितने भी श्रेष्ठ व्यवसायिक हैं, वे शिक्षित और उनकी भाषा श्रेष्ठ होने के कारण वे विश्व में प्रसिद्ध है। भाषा के माध्यम से हम श्रेष्ठ पद भी प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि भाषा के माध्यम से हम शिक्षा प्राप्त करते हैं और शिक्षा के द्वारा हम विभिन्न प्रकार के रोजगारों में प्रवीण हो जाते हैं। इस तरह भाषा हम यह मानते हैं कि समाज को बहुत दूर तक प्रभावित करती है।

औपचारिक और अनौपचारिक भाषा के प्रयोग भाषा के मुख्य दो प्रयोग हैं औपचारिक और अनौपचारिक औपचारिक प्रयोग के अंतर्गत हम प्रयोजनमूलक भाषा का प्रयोग करते हैं जिसमें हम अपने दैनिक कार्यों का संपादन कैसे करें इसकी शिक्षा प्राप्त करते हैं और उसे प्रकार की भाषा का प्रयोग कर हम अपने कार्य पूर्ण कर लेते हैं। प्रयोजनमूलक भाषा के अंतर्गत विभिन्न व्यवसायों से जुड़ी हुई भाषा इसके अंतर्गत आ जाती है जैसे सर्राफा से जुड़ी हुई भाषा, नेताओं से जुड़ी हुई भाषा, सब्जी मंडी से जुड़ी हुई भाषा, विभिन्न प्रकार के साहित्य से जुड़ी हुई भाषा विज्ञान की भाषा तो हम देखते हैं कि यह औपचारिक भाषा है इसकी शब्दावली भी अलग है हर क्षेत्र जैसे विधि अर्थात कानून की भाषा है तो वहां की भाषा के अंतर्गत हम देखेंगे की विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है उन शब्दों को हमें समझना पड़ेगा भले ही हम उसे भाषा के ज्ञाता क्यों ना हो किंतु वे शब्द हमको समझना पड़ते हैं।

अनौपचारिक भाषा के अंतर्गत हम देखते हैं ऐसे शब्द आते हैं जो तत्सम- तद्भव शब्द भी हो सकते हैं। जो देशज शब्द भी हो सकते हैं । अनौपचारिक भाषा के अंतर्गत हम लिखित भाषा को नहीं ले सकते उसमें केवल मौखिक भाषा का ही प्रयोग होता है और उसे पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता इसमें व्याकरण से संबंधित नियमों का पालन नहीं होता और इसमें हम कई ऐसे मापदंड हैं जो भाषा विज्ञान से जुड़े हुए हैं उनका प्रयोग भी यहां नहीं करते अनौपचारिक भाषा हम अपने मित्रों साधारण तौर पर ऐसे स्थान पर करते हैं जहां हम उसे भाषा के एक साधारण रूप का प्रयोग करते हैं । अनौपचारिक भाषा के अंतर्गत हमारे भाव मुख्य प्रधान होते हैं वह विचार प्रदान नहीं होते ।

अनौपचारिक रूप में भाषा का प्रयोग साधारण से साधारण व्यक्ति करता है और उसकी भाषा में आंचलिक शब्द भी आ जाते हैं साथ ही ऐसे भी शब्द आते हैं जिनको हम अनगढ़ शब्द भी कहते हैं। यह भाषा हम कह सकते हैं की उप बोली या बोली हो सकती है यह किसी

भी राष्ट्र में भले ही ऊपरी तौर पर मुख्य ना लगे किंतु इसका प्रभाव आने वाले समय में भाषा पर देखा जा सकता है। कभी-कभी ऐसी बोलियां भी भाषा बन जाती हैं जो कभी अनगढ़ और अनौपचारिक थी आज वह भाषा बन चुकी है। तो इसलिए इनका महत्व कोई कहे कि नहीं है तो शायद भाषा विज्ञान इसे नहीं मानेगा।

सामाजिक संबंध और संप्रेषण भाषा निरंतर चलती रहती है जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन होते हैं वैसे-वैसे भाषा में भी परिवर्तन दिखाई देते हैं क्योंकि भाषा सामाजिक भावों और विचारों को प्रकट करने का मुख्य माध्यम है जब समाज में बदलाव आता है तो उसके संप्रेषण में भी इस बदलाव का असर हम देख सकते हैं। इसलिए सामाजिक बदलाव अगर विश्व स्तरीय हैं तो वह स्तुत्य है।

यहां भी हम देख सकते हैं कि निम्न वर्ग-मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग की भाषा का संप्रेषण अलग-अलग होता है। निम्न वर्ग की भाषा में हम ग्राम्य शब्दों के दर्शन कर सकते हैं। मध्यम वर्ग कुछ कुछ सही और शुद्ध भाषा का प्रयोग करते मिलता है। और उच्च वर्ग पर हम देखते हैं की अंग्रेजी का अधिक प्रभाव है। इसलिए वह कई जगहों पर अपनी अंग्रेजी की शिक्षा का दिखावा करने के लिए बीच-बीच में अंग्रेजी के वाक्य और शब्द अधिक बोलने और उन पर बल देने लगता है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान में भाषा का संप्रेषण धीरे-धीरे बदल रहा है।

सामाजिक शैली का भाषा पर प्रभाव-

भाषा पर समाज की हर बात का प्रभाव पड़ता है। इसके रीतियों का, रिवाजों का, खान-पान का बोलने की शैली का भी। समाज की हर प्रकार की शैली का प्रभाव भाषा पर पड़ता है। वैसे ही समाज के ओढ़ने पहनने का भी प्रभाव भाषा पर पड़ता है। और उसी से संबंधित शब्द भी बनते हैं। इसलिए कई शब्द जो है हम देखते हैं कि यह कहा जाता है कि यह अमुख भाषा के शब्द हैं। भाषा सदैव समाज के साथ चलती रहती है। इसलिए भाषा के बोलने का जो ढंग होता है वह उस समाज से संबंधित होता है समाज के लोगों के ऊपर जिन भौतिक वस्तुओं का प्रभाव पड़ता है उन सब का प्रभाव हम भाषा पर भी देखते हैं भाषा सामाजिक वातावरण के कारण कहीं स्पष्ट होती है तो कहीं वह बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है उसके पीछे भी कारण यही है कि समाज पर भौतिक वातावरण का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है और भौगोलिक प्रभाव भी समाज पर पड़ता है उसे हम भाषा पर देखते हैं।

सामाजिक संबंध और संप्रेषण भाषा निरंतर चलती रहती है जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन होते हैं वैसे-वैसे भाषा में भी परिवर्तन दिखाई देते हैं क्योंकि भाषा सामाजिक भावों और विचारों को प्रकट करने का मुख्य माध्यम है जब समाज में बदलाव आता है तो उसके संप्रेषण में भी इस बदलाव का असर हम देख सकते हैं। इसलिए सामाजिक बदलाव अगर विश्व स्तरीय हैं तो वह स्तुत्य है।

यहां भी हम देख सकते हैं कि निम्न वर्ग-मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग की भाषा का संप्रेषण अलग-अलग होता है। निम्न वर्ग की भाषा में हम ग्राम्य शब्दों के दर्शन कर सकते हैं। मध्यम वर्ग कुछ कुछ सही और शुद्ध भाषा का प्रयोग करते मिलता है। और उच्च वर्ग पर हम देखते हैं की अंग्रेजी का अधिक प्रभाव है। इसलिए वह कई जगहों पर अपनी अंग्रेजी की शिक्षा का

दिखावा करने के लिए बीच-बीच में अंग्रेजी के वाक्य और शब्द अधिक बोलने और उन पर बल देने लगता है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान में भाषा का संप्रेषण धीरे-धीरे बदल रहा है।

भाषा में सामाजिक शिष्टाचार और विनम्रता :-

भाषा के माध्यम से हम यह समझते हैं कि किस समाज का क्या स्तर है। जब व्यक्ति भाषा का प्रयोग करता है। तब हमें पता चलता है कि वह किस समाज से आता है। उच्च वर्ग से जुड़ा हुआ है कि मध्यम वर्ग से या निम्न वर्ग से। क्योंकि भाषा में जो विनम्रता है भाषा में जो उपलब्ध तो है वह उसे व्यक्ति के बोलने का आधार पर हम समझ सकते हैं।

हर समाज में शिष्टाचार का और विनम्रता का रूप अलग-अलग होता है और उसकी भाषा में यह सब चीज हम देख सकते हैं कहीं आप का ही प्रयोग होता है तो कहीं तू और तुम का भी प्रयोग होता है कुछ लोग समझते हैं कि यह व्याकरण और भाषा की दृष्टि से गलत है किंतु समाज की यह शैली है या फिर वहां के शिष्टाचार का स्वरूप है कई बार समाज के लोगों को यह समझ में नहीं आता कि आप और तुम में क्या अंतर है और उसका प्रयोग करते चले जाते हैं और सदियों सदियों के बाद पता चलता है कि यह प्रयोग गलत था किंतु चलते रहने के कारण आम आदमी तो उसका ही प्रयोग करता है इसलिए भाषा के द्वारा हम उसे समाज की शिष्टाचार और विनम्रता का ज्ञान भी प्राप्त करते हैं

भाषा सामाजिक परंपरा से प्राप्त होती है:-

सामाजिक वास्तु के साथ-साथ भाषा परंपरागत वस्तु भी है। क्योंकि प्रत्येक समाज में भाषा का प्रचार एवं प्रसार लंबी परंपरा से होता रहा है। परंतु वह स्वत: ही उस समाज के व्यक्तियों को प्राप्त नहीं हो जाती। उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। प्रत्येक भाषा की एक परंपरागत धारा होती है। जिसमें भाषण कृत भेद की तरंगे उठती एवं प्रचलित होती रहती हैं। यह धारा निरंतर परिवर्तनशील होने पर भी नित्य स्थायित्व को ग्रहण किया रहती है। कहने का भाव यह है कि समाज विशेष की प्रत्येक पीढ़ी अपने लिए नई-नई भाषा का विकास नहीं करती। पूर्वजों से प्राप्त भाषा को ही वह अपने अनुकूल ढालकर व्यवहार योग्य बना लेती है। और इसी प्रक्रिया में उपयोगी रूपों का निर्माण तथा अनुपयोगी रूपों का विनाश होता रहता है। भाषा की परंपराएं व्यापक क्षेत्र में फैली हुई रहती हैं। यह संभव है कि एक मानव समुदाय की भाषा को दूसरे समुदाय के सदस्य न समझ सकें क्योंकि उनकी भाषा परंपराएं तथा संग्रहित संकेतार्थ भिन्न हो सकते हैं। किंतु यह संभव नहीं है कि कोई समुदाय भाषा मात्र से रहित हो। उसके पारस्परिक विचार विनिमय की जो भी भाषा होगी उसका अर्थ ग्रहण परंपरागत नियमों के आधार पर ही होता है। वह यथासंभव भाषा में नवीनता लाने का आग्रह नहीं करते, बल्कि उसके पारंपरिक एवं प्रचलित रूप का ही प्रयोग करते हैं। हिंदी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बंगाली, बघेली, बंगारू, पंजाबी, बुंदेली, मराठी, गुजराती, तमिल, कन्नड़ आदि भारतीय तथा लैटीन ग्रीक जर्मन रूसी फ्रेंच अंग्रेजी आदि अन्य सभी भाषाओं एवं उपभाषाओं के संबंध में यही बात कही जा सकती है। सभी की अपनी-अपनी लंबी परंपरा है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा हमें समाज की परंपरा के अनुकूल प्राप्त होती है।

भाषा हमें समाज द्वारा ही प्राप्त होती है:-

यद्यपि भाषा परंपरागत है और उत्तर अधिकार में भी प्राप्त होती है। तथापि उसे हमें सीखना पड़ता है। उसका हमें अर्जन करना पड़ता है। शरीर के अंगों के समान अथवा धन संपति के समान वह हमें पता नहीं प्राप्त होती। हमें इसे अर्जित करना पड़ता है। मनुष्य जिस समाज अथवा वातावरण में रहता है, अपनी नैसर्गिक बुद्धि से उसी की भाषा वह सीखता है। वह किसी भाषा विशेष को साथ लेकर उत्पन्न नहीं होता। भाषा की सामाजिकता का यह अनिवार्य परिणाम होता है कि जो व्यक्ति जिस समाज में रहता है वह उसी भाषा को सीखना है। जब एक भाषा भाषी प्रदेश का व्यक्ति दूसरे भाषा भाषी प्रदेश में जाकर रहने लगता है तो वह उस दूसरी भाषा भाषी प्रदेश की भाषा सीख लेता है। यही भाषा का अर्जन है। जब मुसलमान भारत में आए तो भारतीयों ने उनकी भाषा फारसी भी सीख ली। उन्होंने भी यहां की भाषा हिंदी और हिंदी भी कहकर सीख लिया। उसके बाद अंग्रेज आए तो भारतीयों ने उनकी भाषा अंग्रेजी भी सीख ली। और अंग्रेजों ने भी हिंदी सीख ली। इस तरह से दोनों देशों के निवासियों ने दोनों भाषाएं सीख ली। तो यहां यह स्पष्ट होता है कि भाषा अर्जित संपत्ति है। वह स्वयं नहीं प्राप्त होती किंतु वह उसे समाज द्वारा ही प्राप्त होती है। अतः समाज का प्रभाव भाषा पर सदैव रहता है।

भाषा समाज के अनुकरण से प्राप्त होती है:-

भाषा कभी स्वत: हम सीख नहीं सकते। भाषा को सीखने के लिए हमें समाज का अनुकरण करना पड़ता है। माता-पिता, भाई-बहन, संरक्षक-शिक्षक आदि सीखने की प्रक्रिया में हमारे सहायक होते हैं। जैसे वे बोलते हैं। वैसे बच्चे उनके मुख से उच्चरित ध्वनियों का अनुकरण करके बोलने लगते हैं। इस प्रकार भाषा का शिक्षण हम अनुकरण द्वारा प्राप्त करते हैं। जैसे दूध से बच्चों के शरीर का विकास होता है। वैसे ही माता-पिता आदि के द्वारा प्रयुक्त भाषा के श्रवण और अनुकरण से बच्चे का बौद्धिक विकास होता है। यदि माता-पिता पीने के पदार्थ को पानी और खाने के पदार्थ को रोटी कहते हैं। तो बच्चा भी उन्हें पानी और रोटी बोलने लगता है। यदि माता-पिता वाटर और ब्रेड बोलते हैं तो बच्चा भी वाटर और ब्रेड बोलने लगता है । भारत की भाषाशास्त्रियों ने इसे व्यवहार कहकर पुकारा है। आरंभ में यह व्यवहार अथवा अनुकरण अधूरा एवं अपूर्ण होता है परंतु जैसे-जैसे बच्चे की क्षमता बढ़ती जाती है अनुकरण में पूर्णता आती जाती है। बड़ा होकर बच्चा समाज में प्रचलित ध्वनियों का अनुकरण कर उस भाषा को बोलने लगता है। प्रदेश की भिन्नता से और वातावरण के भेद से बोलने वालों की बोली में अंतर भी हो जाता है। बच्चों द्वारा अनुकरण और शिक्षित बोली में भी वैसा ही अंतर रहेगा। उदाहरण के रूप में जैसे खड़ी बोली हिंदी का अनुकरण करने वाला बच्चा 'चलता हूँ' कहता है। परंतु ब्रज भाषा बोलने वाला बच्चा 'चलतु हौ' हम बोलते हैं। कन्नौजी बोलने वाला बच्चा 'चल्त हैं' कहता है। मैथिली बच्चा 'चले छी' कहता है। यह सब समाज की बोली के अनुकरण का परिणाम है। इसलिए भाषा समाज के अनुकरण के द्वारा प्राप्त की जाती है।

समाज में परिवर्तन से भाषा परिवर्तित हो जाती है:-

सृष्टि की अन्य वस्तुओं के समान भाषा भी समाज के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। परंतु यह परिवर्तन इतना धीरे-धीरे होता है कि लक्षित नहीं होता। कुछ समय के बाद ही वह पता

चलता है। भाषा में यह परिवर्तन ध्वनि, रूप, अर्थ में आता रहता है। जैसे मेघ से मेह बन गया दधी से दही बन गया, दुग्ध से दूध बन गया। यह सभी समाज के परिवर्तन से हुआ है।

यद्यपि शिक्षा, अनुशासन, संचार व्यवस्था साहित्य समाचार पत्र आदि के द्वारा भाषा के परिवर्तन को रोकने का प्रयास किया जाता है। तथापि आलक्षित परिवर्तन होता ही रहता है। और 200-400 वर्षों के बाद थोड़ा बहुत परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है। पर्याप्त समय भी जाने पर यह अंतर और भी स्पष्ट हो जाता है। और धीरे-धीरे इतना अधिक हो जाता है कि परिवर्तित भाषा वही होने पर भी बिल्कुल अलग भाषा प्रतीत होने लगती है उदाहरण रूप में वैदिक भाषा को और उससे उत्पन्न होने वाले आधुनिक आर्य भाषाओं को हम ले सकते हैं वैदिक भाषा से संस्कृत, संस्कृत से पाली, पाली से प्राकृत भाषा उत्पन्न हुई इसी तरह से आर्य भाषा भी हिंदी, पंजाबी, मराठी आदि के स्वरूप में इतना अंतर आ गया है कि सामान्य वैदिक भाषा और हिंदी भाषा का पारस्परिक संबंध स्वीकार करने में हम सब हिचकिचायेंगे।

भाषा समाज द्वारा पोषित होती है :-

भाषा का आविष्कार समाज ने जीवन व्यवहार को चलाने के लिए किया है। इसलिए भाषा का समाज जीवन से घनिष्ठ संबंध है। संसार के सभी मानव समाज एवं वर्गों में कोई न कोई भाषा अथवा बोली प्रचलित है। जिसके माध्यम से समाज में रहने वाले लोग अपना अपना जीवन व्यवहार चलते हैं इसलिए स्वाभाविक है की भाषा का पोषण भी समाज जीवन से ही हो। वैसे तो कुछ पशु पक्षी भी मानव की भाषा को समझते हैं। और तोता मैना तो उसका उच्चारण भी कर देते हैं। परंतु यह भाषा के मर्म को नहीं समझते। मदारी द्वारा पोषित रिछ बंदर बंदरिया बकरा बकरी आदि सभी भाषा को समझते हैं। परंतु उसे बोल नहीं पाते। तोता बोल सकता है। परंतु विचार विनिमय नहीं कर सकता। और न ही भाषा के मर्म को समझ सकते है। समाज में जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार भाषा का आविष्कार किया है। ध्वनियों के प्रतिकों के रूप में वर्णों का निर्माण किया है। ध्वनि के रूपों में लिपि बनाई है। वह अपने जीवन के सारे क्रियाकलापों को सुचारू रूप से चलाने के लिए भाषा का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त त्यौहार भाषा को सुंदर सम्मिलित और व्यवस्थित बदल देता है तथा उसकी सर्वांगीण विकास के लिए कटिबंध रहता है नए अविष्कृत पदार्थों के लिए नए शब्द रिश्ता है पदार्थ के लिए नए शब्द रचता है उपयुक्त है की भाषा समाज जीवन से पोषित और परिवर्धित होती है।

१०.४. सारांश

प्रस्तुत इकाई में समाज, संस्कृति और भाषा का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में भाषा और समाज के संबंध के साथ-साथ संस्कृति को भी दर्शाया गया है। भाषा सामाजिक वस्तु है, उसे स्पष्ट किया गया है। जब हम भाषा का अध्ययन करते हैं तब भाषा व्यवहार को सामाजिक संदर्भ में सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है। भाषा अपने व्यवहार में विभिन्न रूप ग्रहण करती हुई दिखाई देती है।

१०.५. दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) भाषा और समाज के संबंध को विस्तार से समझाइए।

२) 'भाषा समाज और संस्कृति की संवाहिका है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

३) संस्कृति और भाषा को रेखांकित कीजिए।

१०.६. लघुत्तरिय प्रश्न

१) भाषा व्यवहार पर प्रकाश डालिए।

२) भाषा समाज के अनुकरण से प्राप्त होती है। स्पष्ट कीजिए।

३) भाषा सामाजिक वस्तु है। कैसे ? स्पष्ट कीजिए।

१०.७ संदर्भ ग्रंथ

१. भाषा विज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा - द्वारिका प्रसाद सक्सेना

२. आधुनिक भाषा विज्ञान का इतिहास - डॉ महेश प्रसाद जायसवाल

३. शैली विज्ञान - डॉ. सुरेश कुमार

४. शैली विज्ञान प्रतिमान एवं विश्लेषण - शशि भूषण पांडे

५. भाषा विज्ञान - भोलानाथ तिवारी

❖❖❖❖

११

भाषा, उपभाषा और बोली

इकाई की रूपरेखा:

११.०. इकाई का उद्देश्य

११.१. प्रस्तावना

११.२. भाषा, उपभाषा और बोली

११.२.१. भाषा का अर्थ एवं परिभाषा

११.२.२. उपभाषा और बोली

११.२.३. मानक भाषा

११.३. सारांश

११.४. दीर्घोत्तरी प्रश्न

११.५. लघुत्तरिय प्रश्न

११.६. संदर्भ ग्रंथ

११.०. इकाई का उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- भाषा के अर्थ को जान सकेंगे।
- भाषा की परिभाषा क्या है उससे परिचित हो जाएँगे।
- भाषा क्षमता तथा भाषा व्यवहार में आप भेद कर पाएंगे।
- उपभाषा और बोली का ज्ञान प्राप्त होगा।
- आप को विभिन्न लिपियों और देवनागरी लिपि का पूरा ज्ञान प्राप्त होगा।

११.१. प्रस्तावना

भाषा केवल व्याकरणिक संरचना में बंधी नहीं रहती। जब समाज में भाषा का व्यवहार होता है तो वह व्यावहारिक भी होती है। और व्याकरण के बंधनों को तोड़ भी देती है। यह तो हम सब जानते हैं कि भाषा का व्यवहार समाज में होता है। और समाज अनेक वर्गों में और अनेक स्तरों में बँटा हुआ होता है।

इस सामाजिक स्तर भेद के कारण भाषा के भी कई स्तर बन जाते हैं। भाषा और समाज का चोली दामन का संबंध है। बिना समाज के भाषा का कभी विकास हो ही नहीं सकता। भाषा के दृष्टि से समाज उसकी नींव है। किसी भी भाषा का आधार समाज ही होता है। यदि समाज नहीं तो भाषा को बोलने वालों के न होने पर उस भाषा का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता। इसलिए भाषा को ऊंचाई पर ले जाने के लिए अगर देखा जाए तो समाज की आवश्यकता सर्वाधिक है। इसी तरह से समाज का विकास भी भाषा के द्वारा ही संभव है भाषा और समाज का संबंध अभिन्न है।

भाषा सीखने की क्षमता तो इंसान में होती है। लेकिन उसे एक भाषायी समाज में रहकर ही सीखा जा सकता है। भाषा के माध्यम से ही समाज एक और संगठित हो सकता है। भाषा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक उस समाज के विचारों को पहुंचाती है। भाषा के माध्यम से ही उस समाज के सभी वर्गों के लोगों के बीच विचारों और ज्ञान को साझा करने का प्रयास किया जा सकता है।

भाषा के माध्यम से ही समाज की सोच व्यवहार और सामाजिक संबंधों को हम समझ सकते हैं भाषा मनुष्य की सामाजिक प्राणी होने का सबसे बड़ा प्रमाण है भाषा संप्रेषण का शिक्षक मध्य होने के साथ-साथ उसे समाज की संस्कृति की संवाहक भी है भाषा संप्रेषण का सशक्त माध्यम होने के साथ-साथ उस समाज की बहुत सी रीतियों, रूढ़ियों, विश्वासों को भी अपने साथ ले चलती है। भाषा हमारी सांस्कृतिक पहचान और हमारी सामाजिक वास्तविकताओं पर प्रभाव छोड़ती है भाषा समाज के लोगों के व्यक्तित्व का विकास करती है भाषा के संस्कार में बड़ों का बहुत बड़ा योगदान रहता है अक्सर यह सुना जाता है कि भाषा समाज का दर्पण है, हम जिन शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। वे हमारे दृष्टिकोण मूल्य और विश्वासों को समाज के सामने, विश्व के सामने प्रकट करती हैं।

११.२. भाषा, उपभाषा और बोली

११.२.१. भाषा का अर्थ एवं परिभाषा:-

मानव जीवन में भाषा का अत्यधिक महत्व है। क्योंकि वह भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। इसलिए उसे निरंतर अपने भावों और विचारों को दूसरों तक अभिव्यक्त करना पड़ता है। एवं दूसरों के भावों और विचारों को ग्रहण करना पड़ता है। ऐसा वह भाषा के माध्यम से ही कर सकता है। निसंदेह कुछ भाव एवं विचार विभिन्न संकेतों द्वारा भी ग्रहण किये और कराये जाते हैं। परंतु उनसे सामाजिक जीवन का समस्त कार्य व्यवहार नहीं चल सकता है। इसलिए मानव जीवन में भाषा की सदैव अपेक्षा रहती है। और उसका स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

'भाषा' शब्द संस्कृत के तत्सम शब्द से उत्पन्न हुआ है। और यह भाषा धातु से व्युत्पन माना जाता है। भाषण शब्द इसी धातु से बनता है। परंतु भाषण और भाषा के अर्थों में अंतर है। भाषण व्यक्तिगत होता है और इसका संबंध व्यक्ति विशेष से ही रहता है। जबकि भाषा सामाजिक वस्तु है। और इसका संबंध संपूर्ण समाज से रहता है। इंग्लिश में भाषा के लिए लैंग्वेज शब्द का प्रयोग किया जाता है। जिसका संबंध लैटीन के शब्द लिंग्वा (लिंग्वा-चिन्ह) से एवं फ्रांसीसी शब्द लॉन्ग से है। इस प्रकार लैंग्वेज शब्द भी मानवीय बोली का ही वाचक

है। कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा शब्द का प्रयोग सभी प्राणियों द्वारा भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले सभी साधनों के लिए किया है, परंतु वह असंगत है भाषा शब्द का प्रयोग मानव की व्यक्त वाणी के लिए ही संगत है। पशु पक्षियों द्वारा उच्चरित ध्वनियों के लिए भाषा शब्द का प्रयोग लाक्षणिक है। हिंदी, पंजाबी आदि में इसके लिए बोली शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। वैसे कुत्ते की बोली, बिल्ली की बोली, कौवे की बोली आदि यहां भी उसका प्रयोग लाक्षणिक ही है। और उसे मानव की बोली की समता नहीं दी जा सकती।

लोग व्यवहार में भाषा शब्द का प्रयोग बडे व्यापक रूप में होता है। सामान्यतः मनुष्य द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली सभी सभ्य एवं असभ्य बोलियां को, प्रांतीय एवं स्थानीय बोलियां को, शुद्ध परनिष्ठित भाषा को एवं राष्ट्रभाषा को भाषा ही कहा जाता है। इतना ही नहीं विभिन्न व्यक्तियों की उनकी निजी विशेषताओं से युक्त बोली को भी भाषा कहा जाता है। जैसे भगवान राम की भाषा, श्री. कृष्ण की भाषा, गांधी जी की भाषा, नेहरू जी की भाषा आदि किसी नगर अथवा ग्राम में रहने वाली विभिन्न जातियों की बोलियां को भी भाषा कह दिया जाता है। जैसे ब्राह्मणों की भाषा, ठाकुरों की भाषा, बनियों की भाषा, धोबियों की भाषा, आदि इसी प्रकार विभिन्न कार्य करने वालों की बोली को भी भाषा कहा जाता है। जैसे अध्यापकों की भाषा, सुनारों की भाषा, लोहार की भाषा, जाटों की भाषा, नाइयों की भाषा आदि। एक स्थान पर रहने वाले विभिन्न धर्मावलंबियों की बोलचाल में व्यवहार्थ बोली को भी भाषा कहते हैं। जैसे हिंदुओं की भाषा, मुसलमान की भाषा, ईसाइयों की भाषा, सिखों की भाषा, जैनियों की भाषा आदि। इसी प्रकार वीरों की भाषा, कायरों की भाषा, संतों की भाषा, कवियों की भाषा, मूर्खों की भाषा, पुलिस की भाषा, तलवार की भाषा आदि प्रयोग देखे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त योगियों और संतों की रहस्यमयी भाषा। ठगों की कृत्रिम भाषा, प्रेमियों की रागमयी भाषा आदि का भी व्यवहार देखा जा सकता है। इस प्रकार लोक व्यवहार में भाषा शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में उपलब्ध होता है।

११.२.२. उपभाषा और बोली:

भाषा के विविध रूप- भाषा के कई रूप हमें प्राप्त होते हैं। जैसे - व्यक्ति बोली, उपबोली, बोली, उपभाषा, भाषा, विभाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं अंतर्राष्ट्रीय भाषा आदि।

बोली, विभाषा (उपभाषा) एवं भाषा पर हम यहां विस्तार से चर्चा करेंगे।

बोली:- ध्वनि समूह का स्थानीय अथवा घरेलू प्रयोग होने पर उसका अस्तित्व वक्ता के मुख और श्रोता के कान पर सीमित रह जाता है उसमें किसी प्रकार की साहित्य रचना नहीं होती है इस प्रकार की ध्वनि समूह को बोली संज्ञा दी जाती है बोली किसी एक वर्ग की भी हो सकती है और एक वर्ग में भी अपने-अपने कुटुंब की हो सकती है। यद्यपि उसमें भाव अभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता विद्यमान होती है तथा भी उसका उपयोग उतना किया जाता है जितना दैनिक जीवन के कार्यकलाप में अत्यंत आवश्यक होता है।

इस प्रकार बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली भाषा के स्थानीय रूप को बोली कहते हैं। भाषा वैज्ञानिकों ने इसकी अलग-अलग परिभाषाएं प्रस्तुत की है-

1) डॉ. कपिल देव द्विवेदी ने अपने ग्रंथ भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र में लिखा है "जो भाषाएँ मंडलीय स्तर पर स्वीकृत रहती हैं तथा जिसमें साहित्यिक रचनाएं भी विद्यमान रहती हैं। उन भाषाओं को बोली की श्रेणी में लिया जाना उचित है। जैसे हिंदी की बोलियां ब्रज, अवधि, बुंदेली, भोजपुरी, कुमाऊनी आदि हैं।"

2) डॉ. हरिप्रसाद सक्सेना अपने ग्रंथ 'भाषा विज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा' में लिखते हैं "किसी सीमित क्षेत्र कि उस उपभाषा को बोली कहते हैं। जो उस क्षेत्र के निवासियों की स्वभावत: घरेलू बोलचाल की भाषा होती है। उच्चारण लगभग एक-सा होता है। जो केवल वक्ताओं के मुखों तक ही सीमित रहती है। वह भी साहित्यिक नहीं होता और जिसकी रूप रचना में स्थानीय भेद स्पष्ट विद्यमान रहता है। क्योंकि वह अपनी समीपवर्ति बोली से भी भिन्न होती है।"

3) जी. वांद्रयेज के अनुसार "निजी उच्चारण व पद रचना के कारण बोली का अपना अस्तित्व होता है प्रवक्ता की मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों से स्वतंत्र होती है।"

4) भाषा विज्ञान कोश- किसी स्थान विशेष के निम्नवर्गीय शिक्षित लोगों की बोलचाल में प्रयुक्त भाषा को बोली कहा गया है। यह बोली स्थानीय समुदाय की पूर्णतया आयोजित रूप से प्राप्त होती है। वे साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अथवा अपने वैयक्तिक गुणों की अभिव्यक्ति के लिए बोली का ही प्रयोग करते हैं।

बोली मैं व्याकरण का बंधन नहीं रहता। जिस प्रकार व्यक्ति समाज की एक इकाई है। वही स्थिति बोली की भी है। क्योंकि कई बोलियों को मिलाकर एक भाषा का निर्माण होता है। बोली की स्थिरता संदेहास्पद होती है। वह थोड़ी दूरी में बदल जाती है। अतः उसमें साहित्य रचना संभव ही नहीं है। डॉ. राजनाथ शर्मा ने स्पष्ट किया है अपने हिंदी भाषा का इतिहास ग्रंथ "एक भाषा या उपभाषा के क्षेत्र में कई प्रकार की ऐसी बोलियां होती हैं, जिनमें 30-40 मील के अंतर पर थोड़ा सा भेद हो जाता है। बुंदेली के क्षेत्र में लोधांति, पँवारी, राठौड़ी आदि जाति विशेष द्वारा बोली जाने वाली बोलियां में भी इसी प्रकार का अंतर दिखाई पड़ता है। विभिन्न बलियो के क्षेत्र में कुछ ऐसे विशिष्ट शब्दों का प्रयोग होता है जिसका दूसरी बोलियां वाले मजाक उड़ाते हैं।

आज जो हिंदी है कभी खड़ी बोली थी। जिसका वर्चस्व मेरठ, मुजफ्फरनगर, बिजनौर तथा दिल्ली के कुछ भागों में था। आज भी इसका वहां यही नाम है।

2) उपभाषा- एक प्रदेश या उप प्रदेश की बोलचाल की भाषा। और जिसमें कामचलाऊ साहित्य भी रचा जाता हो। वह भाषा प्रांतीय भाषा, उपभाषा आदि के नाम से पुकारी जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में भाषा बोली से अपेक्षाकृत विस्तृत होती है। और उसमें पर्याप्त रूप में विकास दिखता है। और उपभाषा में साहित्य रचना की क्षमता भी होती है। यह उपभाषा विभाषा के नाम से भी पुकारी जाती है। भाषा विज्ञान यह मानता है कि भाषा के उस विशिष्ट रूप को उपभाषा कहते हैं जो किसी प्रदेश विशेष अथवा भौगोलिक क्षेत्र में बोली जाती है। यह अपने उच्चारण, व्याकरण संबंधी रूप और शब्द प्रयोग की दृष्टि से कम प्रतिष्ठित अथवा साहित्यिक भाषा से भिन्न होती है। भारत में गुजराती, मराठी, बांगला, पंजाबी, मलयालम,

कन्नड़, ओड़िया आदि विभाषायें ही हैं। ऐसा गंगासाहाय प्रेमी ने अपने भाषा विज्ञान नामक ग्रंथ में लिखा है।

११.२.3 भाषा (मानक भाषा):

मानक शब्द संस्कृत तत्सम शब्द है। जो मान अर्थात नापतौल अर्थ वाली मान धातु से बना है। अंग्रेजी में इसे ही स्टैंडर्ड लैंग्वेज कहा जाता है और हिंदी में मानक भाषा। व्यावहारिक दृष्टि यह टकसाली भाषा कही जाती है, परिष्कृत, परिनिष्ठित भाषा भी कही जाती है।

अनेक भाषाओं के व्यवहार से निकलकर एक शिष्ट या परिष्कृत विभाषा ही भाषा बन जाती है। जो टकसाली होती है। इसे ही आदर्श परिनिष्ठित या मानक भाषा कहा जाता है। इसमें सुंदर साहित्य की रचना होती है। शिष्ट वर्ग इसके प्रयोग में गौरव अनुभव करता है। कई बार आसपास की बोलियां इसके प्रभाव में आकर अपनी विशेषताएं खो बैठती हैं।

मानक भाषा का रूप -

वह भाषा जो किसी देश में आदर्श भाषा मान ली जाती है। जिसमें शिष्ट समुदाय अपना पूरा कार्य करता है। व्यापार, व्यवसाय, शासन संपर्क में जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है। जो व्याकरण से अनुमोदित होती है। वही भाषा मानक भाषा कहलाती है।

डॉ. कपिल देव द्विवेदी इसे परिनिष्ठित या परिष्कृत भाषा ही मानते हैं। उनकी मान्यता है इसे स्तरीय भाषा, स्टैंडर्ड भाषा आदर्श भाषा या टकसाली भाषा भी कह सकते हैं। यह भाषा का आदर्श रूप होता है। साहित्यिक रचनाएं इसी में होती हैं। शासन, शिक्षा और शिक्षित वर्ग में इसका ही प्रयोग होता है। यह भाषा व्याकरण की दृष्टि से परिष्कृत होती है। भाषा का व्याकरण इसी को आधार मानकर बनाया जाता है। अनेक समान भाषाओं में से विशिष्ट समाज या जन साधारण में अधिक प्रचलन के आधार पर किसी एक भाषा को आदर्श भाषा मान लिया जाता है। शिक्षित वर्ग उसी का प्रयोग करता है। यह भाषा राज्यकीय स्तर पर स्वीकृत होती है। इसलिए इसे आदर्श भाषा भी कहते हैं। संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी और चीनी आदि भाषाएँ इसी श्रेणी में आती हैं। आदर्श भाषा के प्रांतीय या प्रादेशिक रूप भी विभिन्न हो जाते हैं। इसके मौखिक और लिखित दो रूप होते हैं। मौखिक में छोटे सरल और सुबोधगम्य वाक्यों का प्रयोग होता है। लिखित में बड़े और कठिन वाक्यों का प्रयोग होता है। लिखित रूप में कृत्रिमता की मात्रा अधिक पाई जाती है।

डॉ. श्याम सुंदर दास के अनुसार कई विभाषाओं में व्यवहरित होने वाली एक शिष्ट परिगृहित विभाषा ही भाषा (राष्ट्रीय भाषा अथवा टकसाली भाषा) कहलाती है।

भाषा विज्ञान कोश के अनुसार किसी भाषा को उसे विभाषा की परिनिष्ठित भाषा कहते हैं। जो अन्य विभाषाओं पर अपना साहित्यिक एवं सांस्कृतिक राजनीतिक श्रेष्ठता स्थापित कर देती है। और उन विभाषाओं के बोलने वाले भी इस भाषा को सर्वाधिक उपयुक्त समझने लगते हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "सभ्यता के विकसित होने पर यह आवश्यक हो जाता है कि भाषा क्षेत्र की कोई एक बोली मानक मान ली जाती है। और पूरे क्षेत्र में संबंधित कार्यों के

लिए उसका प्रयोग होता है। इसे मानक या परिनिष्ठित भाषा भी कहा जा सकता है। और यह दूसरे क्षेत्र के प्रमुख शिक्षित वर्ग के लोगों की शिक्षा, पत्र व्यवहार, समाचार पत्र, आदि की भाषा हो जाती है। साहित्य में भी इसी का प्रयोग होने लगता है।"

यह भी उल्लेखनीय है, कि एक बोली जब भाषा का रूप धारण कर लेती है, तो आसपास की बालियों पर भी उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। वर्तमान खड़ी बोली में समीपवर्ति ब्रज, अवधी, भोजपुरी को प्रभावित किया है। कहीं कहीं यह भी स्थिति आ जाती है, कि भाषा का प्रभाव समीपवर्ति बोलियां का तो अस्तित्व भी मिटा देती है। लैटिन (रोम की) जब इटली की मानक भाषा बनी तो आसपास की बोलियां समाप्त सी-ही हो गई।

मानक भाषा के आधार पर व्याकरण तथा उच्चारण निश्चित कर दिया जाता है। इस कारण मानक भाषा स्थिर हो जाती है। और फिर कुछ काल बाद उसका रूप प्राचीन पड़ जाता है। साथ ही मानक भाषा प्रादेशिक बोलियां को भी प्रभावित करती रहती है। और इस प्रभाव के कारण व्याकरण, शब्द समूह और उच्चारण तीनों पर उसका प्रभाव पड़ता है।

मानक भाषा के मौखिक और लिखित रूप:-

मानक भाषा के प्रादेशिक रूपों के अतिरिक्त लिखित और मौखिक दो रूप होते हैं। सभी मौखिक भाषाएं अपने लिखित रूपों से प्राय: अलग रहती हैं। वहां प्राय: बोलते समय वाक्य छोटे रहते हैं पर लिखित रूप में प्राय: वाक्य बड़े रहते हैं। संस्कृत के बाणभट्ट की कादंबरी के वाक्य कहीं-कहीं पूरे पृष्ठ तक फैल जाते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की पुनर्नवा में भी वाक्य पर्याप्त बड़े-बड़े हैं। पर यह लिखित रूप है। मौखिक रूप में हम ऐसे वाक्यों का प्रयोग नहीं करते। अत: यही माना जाता है कि मौखिक रूप स्वाभाविक पर लिखित अपेक्षाकृत कृत्रिम है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि प्रादेशिक रूप की छाया मौखिक रूप पर अधिक लिखित पर कम रहती है।

मानक भाषा की विशेषताएं:-

भाषा को मानक बनाया जाता है। अथवा वह प्रयोग के माध्यम से स्वयं धीरे-धीरे मानक बन जाती है। पर उसका एक स्वरूप होता है।

1) वह बोली, विभाषा एवं मानक भाषा के स्तरों को पार कर जाती है। तभी मानक रूप धारण करती है।
2) उसको किसी राज्य या देश की प्रतिनिधि भाषा होनी चाहिए।
3) उसे भाषा को एक स्त्री एवं आदर्श रूप प्राप्त हो गया हो।
4) शिक्षित वर्ग द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक तथा प्रशासनिक कार्यों में उसका उपयोग होना स्वाभाविक है।
5) उसका सुनिश्चित व्याकरण हो। जिसका रूप भी आदर्श हो।
6) उसको राजश्री भी प्राप्त हो।
7) उसको संपर्क भाषा भी होनी चाहिए।
8) उसमें नवीन शब्द निर्माण तथा अन्य भाषाओं के शब्दों को समझने की भी शक्ति हो।

9) नयी उसकी एक वैज्ञानिक लिपि भी हो।

10) उसका अपना साहित्य भी हो।

हिंदी का मानकीकरण:-

वर्तमान की हमारी हिंदी खड़ी बोली ही है। किंतु यह परिनिष्ठित रूप में हमारे समक्ष है। यही कारण है कि पश्चिमी हिंदी की पांच बोलियों में से खड़ी बोली का ही हिंदी से सीधा संबंध है। अतः पश्चिमी हिंदी की खड़ी बोली का साहित्य कि या मानकीकरण रूप ही पूरे देश में प्रचलित है। 19वीं शताब्दी से लेकर आज तक खड़ी बोली ने जो अपने में सुधार किए हैं। वे बोली (मेरठ क्षेत्र) से काफी अलग है।

हिंदी के मानकीकृत रूप पर सर्वप्रथम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विचार किया। उनके सुझाव कुछ इस प्रकार हैं।

1) संस्कृत के शब्दों को संस्कृत के अनुसार ही रखना चाहिए। उनके उच्चारण के अनुसार नहीं। जैसे 'रि' का 'ऋ' के रूप में ही लिखना चाहिए। गयान शब्द को भी हमें संस्कृत के अनुसार ही 'ज्ञान' रूप में लिखना चाहिए।

2) क्रिया शब्दों के साथ - ता, ते, ती आदि लिखने पर रेफ नहीं लगाना चाहिए और न ही बाद वाले शब्दों को आधा लिखना चाहिए। जैसे मिलता-चलता, करता आदि इसमें क्रिया के साथ का सीधा जुड़ गया है - (मिल+ता)।

3) जिन शब्दों की शिरोरेखा के ऊपर मात्रा नहीं लगाई जाती है। वहां स्वर के गुणानुसार (अनुनासिक चिन्ह) और यदि मात्रा लगती हो तब (अनुस्वार) लगाया जाए।

4) परसर्ग के संबंध में यह व्यवस्था दी गई है, कि उसे संज्ञा से अलग लिखा जाए। और सर्वनाम से जोड़कर। जैसे 'राम ने', 'सीता ने' तथा 'उसको', 'उनको' आदि। राम संज्ञा है अतः उसमें 'ने' परसर्ग अलग से लिखा गया है। जबकि 'उस' सर्वनाम के साथ 'को' परसर्ग उसमें जुड़ा हुआ है।

स्वतंत्रता के पश्चात राजभाषा के रूप में हिंदी के विकास में उसके मानकीकृत रूप की बहुत अधिक आवश्यकता महसूस की गई। और सुधार के प्रयास भी हुए हैं।

११.३. सारांश

प्रस्तुत इकाई में भाषा का अर्थ, उसकी परिभाषा का विस्तार से अध्ययन किया गया है। उसी के साथ उपभाषा और बोली का भी अध्ययन किया गया है।

११.४. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. भाषा का अर्थ देकर उपभाषा और बोली का विस्तार से विवेचन कीजिए।

2. भाषा की परिभाषा को प्रस्तुत करते हुए उपभाषा और बोली पर प्रकाश डालिए |

११.५. लघुत्तरिय प्रश्न

1) भाषा के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।

2) भाषा की परिभाषा प्रस्तुत कीजिए।

3) उपबोली किसे कहते है, उसपर प्रकाश डालिए|

4) बोली के संदर्भ में विविध विद्वानों की परिभाषा को प्रस्तुत कीजिए।

११.६. संदर्भ ग्रंथ

१. भाषा विज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा - द्वारिका प्रसाद सक्सेना

२. आधुनिक भाषा विज्ञान का इतिहास - डॉ महेश प्रसाद जायसवाल

३. शैली विज्ञान - डॉ. सुरेश कुमार

४. शैली विज्ञान प्रतिमान एवं विश्लेषण - शशि भूषण पांडे

५. भाषा विज्ञान - भोलानाथ तिवारी

❖❖❖❖

१२

शैली विज्ञान

इकाई की रुपरेखा:

१२.० इकाई का उद्देश्य

१२.१ प्रस्तावना

१२.२ शैली विज्ञान

१२.३.१. शैली की अवधारणा

१२.३.२. भारत में शैली विज्ञान

१२.३.३. शैली की परिभाषा

१२.३.४. शैली की विशेषताएँ

१२.३.५. शैली विज्ञान का महत्व

१२.४ सारांश

१२.५ दिर्घोत्तरी प्रश्न

१२.६ लघुत्तरी प्रश्न

१२.७ संदर्भ ग्रंथ

१२.०. इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का छात्र अध्ययन करेंगे -

- प्रस्तुत इकाई में शैली विज्ञान की जानकारी मिल जाएगी।
- शैली विज्ञान की अवधारणा को छात्र समझ जाएंगे।
- शैली विज्ञान की विशेषताओं का अध्ययन होगा।
- शैली विज्ञान के महत्व को जानेगे।

१२.१. प्रस्तावना

शैली विज्ञान यह भाषा विज्ञान की एक नयी शाखा है। जेनेवा स्कूल के भाषाशास्त्रियों तथा वहाँ के कुछ फ्रांसीसी विद्वानों का इस शैली विज्ञान की तरफ ध्यान गया था। सस्यूर के प्रसिद्ध शिष्य चार्ल्स बेली का नाम इस दृष्टि से प्रसिद्ध है। वही रैशनल स्टाइलिस्टिक्स (Rational Stylistics) के जन्मदाता कहे जाते है।

शैली का अध्ययन ही शैलीविज्ञान है। शैली विज्ञान में तो किसी भी शैली का अध्ययन करते हैं। यहाँ पर शैली विज्ञान को ध्वनिशैली विज्ञान, शब्द्शैली विज्ञान, रुपशैली विज्ञान, वाक्यशैली विज्ञान तथा लेखनशैली विज्ञान इन पांच शाखाओं में विभाजित किया जाता है। जिनमें क्रमश: शैली की प्रयोग की दृष्टि से किसी के द्वारा प्रयुक्त ध्वनियों, शब्द समूह, रूपों, वाक्यों और लेखन या मुद्रण पर विचार किया जा सकता है।

१२.२. शैली विज्ञान

१२.२.१. शैली की अवधारणा:

शैली अंग्रेजी शब्द 'स्टाइल' का हिंदी रूपांतरण है। जो 'स्टीलस' (STYLUS) ग्रीक और लैटिन शब्द से व्युत्पन्न हुआ है। जो अपने आरंभिक समय में ग्रामोफोन की सुई का अर्थ देती थी। इसके उपरांत धूप घड़ी एवं मोम की पट्टीयों पर, जो धातु से बनी नुकीली छड़ी/कलम से लिखा जाता था। उसके लिए प्रयुक्त होने लगा। इसके अलावा स्टाइल शब्द के प्राचीन नाम 'स्टेर' (पर्वत, शीर्ष) स्टाइलोस (स्तंभ) स्टाइलूस को क्रमश: अवेस्टा, ग्रीक और लैटिन में देखा जा सकता है। शैली के लिए प्राचीनतम अर्थ वर्तमान अर्थ से काफी भिन्न है।

शैली विज्ञान के क्षेत्र में शैली का प्रयोग चार्ल्स बेली ने बोली के संदर्भ में किया। शैली विमर्श के संदर्भ में प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार इंडियाना यूनिवर्सिटी और अमेरिका के सोशल रिसर्च काउंसिल के तत्वावधान में किया गया। जिसमें भाषाविदों मनोवैज्ञानिकों – साहित्य आलोचकों द्वारा विचार विमर्श हुआ।

शैली प्रादुर्भाव होने के तीन प्रकार है - व्यक्ति निर्मित, समाजनिर्वाचित और व्यक्तिनिर्वाचित। शैलीविज्ञान यह मान कर चलता है कि साहित्य शाब्दिक कला है तो साहित्य के मार्ग को समझने का उपकरण भी शब्द (भाषा) ही है।

शैलीविज्ञान की दृष्टि मूलत: भाषावादी है। बेनिसेन ग्रे ने शैली के कई आयामों की बात की है। उनके अनुसार शैली मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यवहार रूप, साहित्य एवं अलंकार शास्त्रीय दृष्टिकोण से वक्ता रूप, भाषा शास्त्री साइकोलॉजिस्ट के दृष्टिकोण से प्रच्छन रूप, साहित्य शास्त्र शैली विज्ञान, भाषा विज्ञान एवं साहित्य शास्त्र दोनों की साहयता लेता हुआ भी दोनों से अलग स्वतंत्र विज्ञान है। शैली विज्ञान एक और भाषा शैली का अध्ययन, साहित्य शास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर करता है, जिसमें रस, अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि, रीति, वृति- प्रवृत्ति, शब्द-शक्ति, गुण-दोष, बिंब, प्रतीक आदि आते हैं। दूसरी ओर शैली विज्ञान के अंतर्गत भाषा शैली का अध्ययन भाषा विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है। जिसमें भाषा की प्रकृति और संरचना के अनुशीलन को महत्व दिया जाता है।

शैली विज्ञान के अध्ययन की मुख्यतः दो दिशाएं प्रचलित है -

१. साहित्य शास्त्र के आधार पर और २. भाषा विज्ञान के आधार पर

साहित्य शास्त्र के आधार पर -

साहित्य शास्त्र के आधार पर किसी कवि लेखक की कृति का शैली वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। अर्थात रस अलंकार वक्रोक्ति रीति ध्वनि गुण दोष वृत्ति प्रवृत्ति बिंब छन्द आदि के आधार पर देखा जाता है, कि लेखक या कवि ने काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का अनुसरण उचित रूप में कहां तक किया है एवं कृति या रचना की शैली में साहित्य शास्त्र के नियमों का पालन व्यवस्थित रूप से कहां तक हुआ है। इस प्रकार का अध्ययन साहित्य शास्त्र के क्षेत्र की वस्तु मानी जाती है।

भाषा विज्ञान के आधार पर -

किसी कवि या लेखक की रचना में प्रयुक्त भाषा की प्रकृति और संरचना के तत्वों का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं। प्रकृति और संरचना के आधार पर भाषा के पांच तत्व माने जाते हैं। ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य और अर्थ। इसके आधार पर देखा जाता है कि कवि की भाषा में कहां ध्वनि विचलन, ध्वनि चयन, ध्वनि समानांतर का प्रयोग हुआ है। कहां शब्द विचलन शब्द चयन शब्द समानांतर किया गया है। इसी प्रकार रूप स्तर वाक्य स्तर तथा अर्थ स्तर पर भी अध्ययन किया जाता है। वाक्यों अंतर्गत मुहावरों एवं लोकोक्तियां के विचलन आदि का अध्ययन भी किया जाता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान के आधार पर रचनाकार की भाषा का विश्लेषण अत्यंत गहराई के साथ किया जाता है।

भारत में शैली विज्ञान:-

भारत में शैली विज्ञान का अध्ययन आधुनिक युग की देन है। पाश्चात्य साहित्य में शैलीविज्ञान पर बहुत कार्य हुआ है। साथ ही अनेकानेक ग्रंथ भी प्रकाशित हुए हैं। इन ग्रंथो में शैलीविज्ञान के स्वरूप को अत्यंत विस्तार पूर्वक समझने का प्रयास किया है। भारत के विद्वान इन्हीं ग्रंथो का अनुगमन कर शैली विज्ञान के स्वरूप को समझने एवं समझाने का प्रयास कर रहे हैं। यही कारण है कि कुछ विद्वान शैली विज्ञान को भाषा विज्ञान से जोड़ते हैं। कुछ साहित्य शास्त्र से तथा कुछ भाषा विज्ञान तथा साहित्य शास्त्र दोनों से कुछ विद्वान इस स्वतंत्र विषय के रूप में स्वीकार करते हैं। कुछ विशेष प्रयोग भाषा विज्ञान का अंग मानते हैं।

१२.२.२. शैली की परिभाषा:

पश्चात्य विद्वानों की परिभाषा:

ज्योफ्री ऐन लीच के अनुसार – "साहित्य में भाषागत अध्ययन शैली विज्ञान है।"

न्यूनमैन का विचार है कि "भाषा के अंतर्गत सोचना ही शैली है।"

गल्प्रिन के अनुसार "शैली विज्ञान विशिष्ट स्तर का भाषा विज्ञान है।"

गेटे के विचार में "किसी भी रचनाकार की शैली उसके दिमाग की विशेष विश्वसनीय प्रतिलिपि होती है।"

रोमन याकोबसन के अनुसार "भाषा ज्ञान शाब्दिक संरचना का सार्वभौमिक विज्ञान है। अतः साहित्य आलोचना तक को इसका अंगभूत कहा जा सकता है।"

एलिस कहते हैं कि “स्वयं विचार ही शैली है।”

मेरी का कथन है कि “भाषा के उस वैशिष्ट्य को शैली कहते हैं। जो भावों और विचारों को उचित ढंग से प्रेषित करती है।”

शेरन के अनुसार – “किसी भी कलात्मक अभिव्यक्ति में व्यक्तित्व की विद्यमानता को शैली कह सकते हैं।”

स्लेट की मान्यता है कि “शैली भाषा और विचार दोनों में ही विद्यमान रहती है।”

प्राउस्ट के अनुसार “शैली एक तकनीक का प्रश्न नहीं, बल्कि यह एक दृष्टि का प्रश्न है।”

कुल मिलाकर यूरोपीय समीक्षकों के अनुसार भाषा विज्ञान तथा साहित्यिक समीक्षा का संगम शैली है। अमेरिकन मान्यता के अनुसार संप्रेषण के स्तर पर शैली से संबंधित साहित्य केंद्रित अध्ययन ही वस्तुत: शैलीवैज्ञानिक अध्ययन है।

तो रूसी वैज्ञानिकों के अनुसार शैली विज्ञान रूसी रुपवाद और चेक संरचनावाद का मिश्रण है। फ्रेंच विद्वानों के अनुसार कोई भी साहित्यिक कृति शैलिबद्ध अभिव्यक्तियों की समष्टि है।

भारतीय विद्वानों की परिभाषाएं:

डॉ. सुरेश कुमार के अनुसार “शैली का वैज्ञानिक अध्ययन शैली विज्ञान है।”

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार “शैली के वैज्ञानिक अध्ययन को शैली विज्ञान कहते हैं।”

डॉ. श्यामसुंदर दास के अनुसार “किसी कवि या लेखक की शब्द योजना वाक्यांशों का प्रयोग वाक्य की बनावट और उनकी ध्वनि आदि का नाम ही शैली है।”

डॉ. नगेंद्र के अनुसार “शैली विज्ञान की सही परिभाषा उसका सही अर्थ और क्षेत्र विस्तार यही है कि वह भाषा विज्ञान के नियमों तथा प्रविधि के अनुसार साहित्य के भाषिक विज्ञान का रुपात्मक अध्ययन है।”

गुलाब राय जी के अनुसार “शैली शब्द के दो अर्थ है। एक तो वह अर्थ है जिसमें यह कहा जाता है की शैली ही मनुष्य है। यहां इस अर्थ में शैली अभिव्यक्ति का वैयक्तिक प्रकार है। दूसरे अर्थ में शैली अभिव्यक्ति के सामान्य प्रकारों को कहते हैं।”

१२.२.३. शैली की विशेषताएं-

शैली विज्ञान पर कई महत्वपूर्ण रचनाओं के लेखक और विद्वानों ने अपनी बातें रखी है। जो इस प्रकार है। शैली विज्ञान आलोचना का भाषा माध्यमिक दृष्टिकोण है। साहित्यकार के समक्ष अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन भाषा है। उसकी अभिव्यक्ति भी भाषा है। यह कथ्य को अभिव्यक्ति स्तर पर प्रभावपूर्ण बनाने हेतु भाषा के विशिष्ट प्रयोग करता है। इन विशिष्ट भाषिक प्रयोगों की साभिप्रायता को शैली-विज्ञान आलोचना के भाषावादी दृष्टिकोण से उद्घाटित करता है।

1. कृति की स्वायत्तता - शैली विज्ञान कृति को स्वायत्त घोषित करता है तथा इसी दृष्टि से कृति के कथ्य का उद्घाटन तथा मूल्यांकन करता है।

2. वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिकता - शैली विज्ञान साहित्य आलोचना की वस्तुनिष्ठ प्रणाली है। अत: अपने विश्लेषण कार्य को वैज्ञानिकता प्रदान करने के लिए भाषा वैज्ञानिक, शैली आधारित एवं साहित्य अवधारणा मूलक विविध प्रतिमानों का आधार ग्रहण करता है।

3. विश्लेषणात्मकता - शैली विज्ञान रचना की विश्लेषण क्रिया प्रस्तुत करता है। उस प्रक्रिया में यह भाषा के माध्यम ग्रहण करता है। तथा रचना के बाह्य संरचना की माध्यम से गहन संरचना को उद्घाटित करता है।

4. भाषा माध्यमिक दृष्टिकोण - शैली विज्ञान आलोचना का भाषा माध्यमिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से भाषा के अवयव ध्वनि शब्द रूप वाक्य अर्थ और प्रोक्ति को विश्लेषण के उपकरण के रूप में प्रस्तुत करता है।

5. साहित्य आलोचना का सिद्धांत - शैली विज्ञान एक स्वतंत्र ज्ञानानुशासन होने के साथ-साथ साहित्य आलोचना की सैद्धांतिकी प्रस्तुत करता है।

6. साहित्य आलोचना की प्रणाली - शैली विज्ञान जहां सैद्धांतिकी के लिए प्रतिमानों की संरचना प्रस्तुत करता है। वही विश्लेषण की प्रक्रिया में वस्तुनिष्ठ प्रणाली का भी कार्य संपन्न करता है।

7. सौंदर्य-उन्मीलकता - शैली विज्ञान रचना के तथ्य विश्लेषण के साथ-साथ कृति के सौंदर्यात्मक पक्ष को खंडित नहीं करता वह रचना के सौंदर्य की शैल्यचिकित्सा नहीं करता। उसे अपनी विश्लेषण प्रक्रिया द्वारा संक्षिप्त रूप से उन्मीललित करता है।

8. विश्लेषण की क्षमता एवं संभावनाएं - शैली विज्ञान की प्रकार्यात्मक उपलब्धियां असंदिग्ध है। इन्हीं के परिपेक्ष में इस ज्ञानानुशासन की क्षमता एवं संभावनाओं का काव्यगत स्तर उजागर होता है। वस्तुत शैली विज्ञान कृति के सौंदर्यात्मक कथ्य को खंडित रूप में विश्लेषित नहीं करता। बल्कि इन विश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं में पाठ की अन्विति को ध्यान में रखते हुए अपने विश्लेषण के संश्लेषण भी उपस्थित करता है।

१२.२.४. शैली विज्ञान की शाखाएं -

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार भाषा विज्ञान के आधार पर भाषा की पांच इकाइयां मानी गई है। ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य और अर्थ हैं, इन इकाइयों के आधार पर पांच शाखाएँ मानी गई है। ध्वनि शैली विज्ञान, शब्द शैली विज्ञान, रूप शैली विज्ञान, वाक्य शैली विज्ञान और अर्थ शैली विज्ञान।

१. ध्वनि शैली विज्ञान - इसके अंतर्गत ध्वनि विचलन, ध्वनि चयन, ध्वनि समानांतरता, लय छन्द व्यवस्था आदि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

२. शब्द शैली विज्ञान - इसके अंतर्गत शब्द विचलन, शब्द चयन, शब्द समानांतरणता, शब्द अलंकारों में प्रयुक्त शब्दों के विचलन समानता आदि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

३. वाक्य शैली विज्ञान और रूप शैली विज्ञान।
   1) ध्वनि शैली विज्ञान - इसके अंतर्गत ध्वनि विचलन, ध्वनि चयन, ध्वनि समानांतरता, लय छन्द व्यवस्था आदि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

   2) शब्द शैली विज्ञान - इसके अंतर्गत शब्द विचलन शब्द, चयन शब्द, समानांतरणता शब्द अलंकारों में प्रयुक्त शब्दों के विचलन समानता आदि वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

   3) रूप शैली विज्ञान - इसके अंतर्गत रूप विचलन, रूप चयन, रूप समानांतरणता आदि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

४. वाक्य शैली विज्ञान - इसके अंतर्गत विविध प्रकार के वाक्यों मुहावरों, वाक्य चयन, वाक्य विचलन आदि का अध्ययन किया जाता है।

५. अर्थशैली विज्ञान - इसके अंतर्गत भी विविध प्रकार के अर्थ चयन, अर्थ विचलन, अर्थ प्रभाव आदि का अध्ययन किया जाता है।

१२.२.५. शैली विज्ञान का महत्व -

डॉ. रविंद्रनाथ श्रीवास्तव की पुस्तक 'शैली विज्ञान और आलोचना की नई भूमिका' एक आंदोलन के रूप में उभर कर आई और प्रथम बार साहित्य को साहित्येतर आयामों से अलग देखने की प्रवृत्ति उभरी। डॉ. साहब ने शैली विज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसके महत्व का प्रतिपादन इस प्रकार किया है। शैली विज्ञान साहित्यिक आलोचना का सिद्धांत भी है और प्रणाली भी। सिद्धांत के रूप में उसकी यह प्रमुख मान्यता है कि साहित्य शाब्दिक कला है। और कृति के रूप में साहित्यिक रचना भाषा की अपनी सीमा में बंधी एक स्वनिष्ठ इकाई है। यह सृजनात्मक समीक्षा का नया आयाम है। शैली विज्ञान को रीति विज्ञान के नाम से भी अभिहित करने का प्रयास हुआ। शैली विज्ञान साहित्य के भाषिक विधान का रुपात्मक अध्ययन है। शैली विज्ञान साहित्य भाषा के साभिप्राय अध्ययन का विज्ञान है। शैली विज्ञान का एक सांख्यिकी आधार भी है। शैली विज्ञान साहित्य को समझने की एक दृष्टि है। यह विधा कृति में अंतर्निहित साहित्यिकता का उद्घाटन करती है। यह भाषा की प्रकृति एवं संरचना को स्पष्ट करने में सक्षम है। तथा यह सर्वथा नूतन आलोचना विधा किसी कृति की उसके हर कोण से समीक्षा करने में सक्षम है।

१२.४ सारांश

प्रस्तुत इकाई में शैली विज्ञान का अध्ययन किया गया है। इसमें शैली की अवधारण, शैली विज्ञान की परिभाषा, उसकी विशेषताएँ, शाखाएँ, महत्व की चर्चा की गयी है।

१२.५ दिर्घोत्तरी प्रश्न

१. शैली विज्ञान की परिभाषा देकर, उसे विस्तार से स्पष्ट कीजिए।

२. शैली विज्ञान क्या है, उसकी अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

३. शैली विज्ञान की विस्तृत विवेचना कीजिए।

१२.६ लघुत्तरी प्रश्न

१. शैली विज्ञान में 'शैली' शब्द को अंग्रेजी में क्या कहते है?

२. शैली विज्ञान के क्षेत्र में शैली का प्रयोग चार्ल्स बेली ने किस संदर्भ में किया है?

३. शैली विज्ञान की कितनी शाखाएँ है?

४. 'शैली के वैज्ञानिक अध्ययन को शैली विज्ञान कहते हैं।' यह परिभाषा किस विद्वान की है?

१२.७ संदर्भ ग्रंथ

१. भाषा विज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा - द्वारिका प्रसाद सक्सेना

२. आधुनिक भाषा विज्ञान का इतिहास - डॉ महेश प्रसाद जायसवाल

३. शैली विज्ञान - डॉ. सुरेश कुमार

४. शैली विज्ञान प्रतिमान एवं विश्लेषण - शशि भूषण पांडे

५. भाषा विज्ञान - भोलानाथ तिवारी

❖❖❖❖